पञ्चास्तिकाय

अनुक्रमणिका

कलश

मंगलाचरण

001) मंगलाचरण

द्रव्य-सामान्य

002) शास्त्र का प्रयोजन
003) पंचास्तिकाय-संक्षिप्त व्याख्यान
003) पाँच अस्तिकायों के विशेष नाम
005) अस्तित्व और कायत्व किसप्रकार ?
005) पंचास्तिकायों और काल की द्रव्य संज्ञा
007) द्रव्यों के एक-क्षेत्रावगाह
007) सत्ता का स्वरूप
009) सत्ता और द्रव्य में अभिन्नता
009) द्रव्य-लक्षण तीन प्रकार से
011) नयों द्वारा द्रव्य का लक्षण
011) द्रव्य-पर्यायों में अभेद
013) द्रव्य और गुणों में अभेद
013) प्रमाण सप्तभंगी
015) सत का विनाश नहीं, असत् का उत्पाद नहीं
015) गुण-पर्याय
017) कथंचित उत्पाद-विनाश
017) जीव का कथंचित जन्म-मरण
020) सिद्ध भगवान में कथंचित उत्पाद-व्यय
020) पाँच अस्तिकाय का विशेष वर्णन
023) काल द्रव्य का प्रतिपादन
023) निश्चय-काल
025) व्यवहार-काल
025) व्यवहारकाल की पराधीनता

जीवास्तिकाय

027) जीवास्तिकाय का व्याख्यान
027) मुक्त अवस्था का निरुपाधि-स्वरूप
030) व्यवहार से जीवत्व गुण
030) जीवों का स्वाभाविक प्रमाण तथा मुक्त / अमुक्त
033) संसारी जीव देह प्रमाण
033) शरीर के अनुसार जीव की अवगाहना
035) सिद्धों की अवगाहना
035) सिद्धों मेँ कार्य-कारण-भाव
037) मुक्ति में भी जीव का सद्भाव
037) जीव का चेतना भाव
039) त्रिविध चेतना के स्वामी
039) जीव का उपयोग
041) ज्ञानोपयोग के भेद
041) तीन अज्ञान
048) दर्शनोपयोग के भेद
048) जीव और ज्ञान में अभेद

050) द्रव्य का गुण में सर्वथा भेद में दोष
050) द्रव्य और गुण के अभिन्न प्रदेश
052) भेद में भी कथंचित अभेद का समर्थन
052) निश्चय से भेदाभेद का उदाहरण
054) ज्ञान-ज्ञानी के सर्वथा भेद में दोष
054) ज्ञान-ज्ञानी में समवाय सम्बन्ध का निषेध
056) गुण-गुणी के कथंचित् एकत्व
056) द्रव्य-गुणों के कथंचित् अभेद में दृष्टांत
059) गुणमयी जीवों की संख्या
059) कथंचित उत्पाद-व्यय
061) जीव की नर-नारक आदि पर्याय का कारण
061) औदयिकादि पाँच भाव व्याख्यान
063) कर्तृत्व की मुख्यता से व्याख्यान
063) उदयागत द्रव्यकर्म, व्यवहार से रागादि परिणामों का कारण
065) पूर्वपक्ष -- एकान्त से जीव को कर्म के अकर्तृत्व में दूषण
065) परिहार
067) अब उस ही व्याख्यान को आगम-संवाद से दृढ करते हैं
067) निश्चयनय से अभेद षट्कारक
069) पूर्वपक्ष गाथा
069) परिहार गाथाएं - द्रव्य कर्मों का कर्ता जीव नहीं
071) पुद्गल उपादानरूप से स्वयं ही कर्मपने रूप परिणमित
071) दृष्टान्त
073) कर्म-फल में भोक्तृत्व
073) कर्तृत्व भोक्तृत्व का उपसंहार
075) कर्म-संयुक्तत्व कर्म-रहितत्व
075) प्रभुत्व का ही कर्मरहितत्व की मुख्यता से प्रतिपादन
077-078) जीवास्तिकाय चूलिका
077-078) मुक्त के ऊर्ध्वगति और संसारी जीवों के छहगति

पुदगलास्तिकाय

080) पुद्गल-स्कन्ध व्याख्यान
080) स्कन्ध आदि चार विकल्पों के लक्षण
082) स्कन्धों के पुद्गलत्व व्यवहार
082) अब, उन्हीं छह भेदों का वर्णन करते हैं
084) परमाणु व्याख्यान
084) पृथ्वी-आदि जाति की परमाणु जाति
086) शब्द पुद्गल-स्कन्ध की पर्याय
086) परमाणु के एक प्रदेशत्व
088) परमाणु द्रव्य में गुण-पर्याय का स्वरूप
088) पुदगलास्तिकाय उपसंहार

धर्म-अधर्म-अस्तिकाय

090) धर्मास्तिकाय का स्वरूप
090) अब धर्म के ही शेष रहे स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं
092) धर्म के गतिहेतुत्व में दृष्टान्त
092) अधर्मास्तिकाय का स्वरूप
094) धर्माधर्म द्रव्य का अस्तित्व न मानने पर दूषण
094) गति-स्थितिहेतुत्व के विषय में धर्म-अधर्म अत्यन्त उदासीन
096) युक्ति

आकाश-अस्तिकाय

097) लोकालोकाकाश-स्वरूप
098) लोक-अलोक
098) धर्माधर्म सम्बन्धी पूर्वपक्ष के निराकरणार्थ

काल-द्रव्य
100) स्थित पक्ष का प्रतिपादन
100) आकाश के गति-स्थिति हेतुत्व के अभाव में और भी कारण
102) उपसंहार

उपसंहार
103) धर्मादि तीनों के कथंचित एकत्व-पृथक्त्व का प्रतिपादन

चूलिका
104) चेतनाचेतन-मूर्तामूर्तत्व प्रतिपादन
104) सक्रिय-निष्क्रियत्व प्रतिपादन
106) प्रकारान्तर से मूर्तामूर्तत्व प्रतिपादन
106) व्यवहार-निश्चय काल प्रतिपादन
108) नित्य / क्षणिक काल के भेद
108) काल के द्रव्यत्व-अकायत्व का प्रतिपादन
110) भावना-फल प्रतिपादन
110) अब दु:ख से मोक्ष के कारण का क्रम कहते हैं

नव-पदार्थ
112) नव-पदार्थ के भेद
112) मोक्षमार्ग की सूचना
114) व्यवहार सम्यग्दर्शन
114) सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का विशेष विवरण

जीव-पदार्थ
116) जीवादि नवपदार्थों का नाम और स्वरूप
116) जीव का स्वरूप
118) पृथ्वीकाय आदि पाँच भेदों का प्रतिपादन
118) व्यवहार से अग्नि और वायुकायिक जीवों के त्रसपना
120) पृथ्वीकायिक आदि पाँचों के एकेन्द्रियत्व
120) एकेन्द्रियों के अस्तित्व के विषय में दृष्टांत
122) दो इन्द्रिय के भेद
122) तीन इन्द्रिय
124) चार इन्द्रिय जीव
124) पंचेन्द्रिय जीव
126) उपसंहार
126) गति नाम-कर्म का कार्य
128) जीव का संसारी-मुक्त भेद से उपसंहार
128) भेद-भावना, हिताहित कर्तृत्व-भोक्तृत्व प्रतिपादन
131) जीव पदार्थ उपसंहार, अजीव पदार्थ प्रारंभ सूचक

अजीव-पदार्थ
132) अजीव-तत्त्व प्रतिपादन
134-135) भेद-भावनार्थ देहगत शुद्ध जीव प्रतिपादन
134-135) जीव-पुद्गल का संयोग-परिणाम पुण्यादि सात पदार्थों का कारण

पुण्य-पाप-पदार्थ
139) भाव पुण्य-पाप-योग्य परिणाम की सूचना
139) द्रव्य-भाव पुण्य-पाप का व्याख्यान
141) पुण्य-पाप का मूर्तत्व-समर्थन
141) कथंचित मूर्त जीव का मूर्त कर्म के साथ बन्ध प्रतिपादन

शुभाशुभास्रव
143) पुण्यास्रव प्रतिपादक
143) प्रशस्त राग
145) अनुकम्पा का स्वरूप
145) चित्त की कलुषता का स्वरूप

147) पापास्रव प्रतिपादक
147) भाव पापास्रव का विस्तार

संवर

149) संवर पदार्थ प्रतिपादक अंतराधिकार
149) पुण्य-पाप संवर का स्वरूप
151) अयोग-केवली जिन की अपेक्षा सम्पूर्ण संवर

निर्जरा-पदार्थ

152) निर्जरा पदार्थ प्रतिपादक अंतराधिकार
153) आत्म-ध्यान निर्जरा का कारण
153) ध्यान की सामग्री और लक्षण

बंध-पदार्थ

155) बन्ध पदार्थ प्रतिपादक अंतराधिकार
155) बहिरंग-अंतरंग बंध के कारण
157) बंध का बहिरंग निमित्त मिथ्यात्वादि द्रव्य प्रत्यय भी

मोक्ष-पदार्थ

158-159) भाव-मोक्ष-रूप एकदेश मोक्ष का व्याख्यान
160) द्रव्य-कर्म-मोक्ष प्रतिपादन
160) द्रव्य-मोक्ष

मोक्ष-मार्ग चूलिका

162) जीव-स्वभाव
162) स्वसमय-परसमय प्रतिपादन
164) परसमय का विशेष विवरण
164) परचारित्र परिणत पुरुष को मोक्ष का निषेध
166) स्व-समय का विशेष विवरण
166) स्वसमय को प्रकारान्तर से व्यक्त करते हैं
168) व्यवहार मोक्ष-मार्ग का निरूपण
168) निश्चय मोक्ष-मार्ग का प्रतिपादन
170) निश्चय-मोक्षमार्ग
170) भाव सम्यग्दृष्टि व्याख्यान
172) निश्चय-व्यवहार रत्नत्रय का फल
172) स्थुल-सूक्ष्म पर-समय का व्याख्यान
174) शुद्ध सम्प्रयोग के मोक्ष का निषेध
174) राग ही सम्पूर्ण अनर्थ-परम्पराओं का मूल
177) सूक्ष्म परसमय के व्याख्यान का उपसंहार
177) पुण्यास्रव के मोक्ष नहीं होता है
179) शुद्ध सम्प्रयोग से पुण्यबंध
179) पन्चास्तिकाय प्राभृत शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता
181) उपसंहार रूप से शास्त्र परि-समाप्ति-हेतु

!! श्रीसर्वज्ञवीतरागाय नम: !!

श्रीमद्-भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव-प्रणीत

श्री

पञ्चास्तिकाय

मूल प्राकृत गाथा, श्री अमृतचंद्राचार्य विरचित 'समय-व्याख्या' नामक संस्कृत टीका का हिंदी अनुवाद, श्री जयसेनाचार्य विरचित 'तात्पर्य-वृत्ति' नामक संस्कृत टीका का हिंदी अनुवाद सहित

आभार : पं जयचंदजी छाबडा, पं हुकमचंद भारिल्ल

!! नम: श्रीसर्वज्ञवीतरागाय !!

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नम: ॥1॥
अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलंका
मुनिभिरूपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥2॥
अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नम: ॥3॥

अर्थ : बिन्दुसहित ॐकार को योगीजन सर्वदा ध्याते हैं, मनोवाँछित वस्तु को देने वाले और मोक्ष को देने वाले ॐकार को बार बार नमस्कार हो । निरंतर दिव्य-ध्वनि-रूपी मेघ-समूह संसार के समस्त पापरूपी मैल को धोनेवाली है मुनियों द्वारा उपासित भवसागर से तिरानेवाली ऐसी जिनवाणी हमारे पापों को नष्ट करो । जिसने अज्ञान-रूपी अंधेरे से अंधे हुये जीवों के नेत्र ज्ञानरूपी अंजन की सलाई से खोल दिये हैं, उस श्री गुरु को नमस्कार हो । परम गुरु को नमस्कार हो, परम्परागत आचार्य गुरु को नमस्कार हो ।

॥ श्रीपरमगुरुवे नम:, परम्पराचार्यगुरुवे नम: ॥

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमन: प्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री-पञ्चास्तिकाय नामधेयं, अस्य मूल-ग्रन्थकर्तार: श्री-सर्वज्ञ-देवास्तदुत्तर-ग्रन्थ-कर्तार: श्री-गणधर-देवा: प्रति-गणधर-देवास्तेषां वचनानुसार-मासाद्य आचार्य श्री-कुन्द-कुन्दाचार्य-देव विरचितं ॥

। (समस्त पापों का नाश करनेवाला, कल्याणों का बढ़ानेवाला, धर्म से सम्बन्ध रखनेवाला, भव्यजीवों के मन को प्रतिबुद्ध-सचेत करनेवाला यह शास्त्र श्री पञ्चास्तिकाय नाम का है, मूल-ग्रन्थ के रचयिता सर्वज्ञ-देव हैं, उनके बाद ग्रन्थ को गूंथनेवाले गणधर-देव हैं, प्रति-गणधर देव हैं उनके वचनों के अनुसार लेकर आचार्य श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा रचित यह ग्रन्थ है । सभी श्रोता पूर्ण सावधानी पूर्वक सुनें ।)

॥ श्रोतार: सावधानतया श्रृणवन्तु ॥

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥
सर्वमंगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकं
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम् ॥

। (देव वंदना)

सुध्यान में लवलीन हो जब, घातिया चारों हने ।
सर्वज्ञ बोध विरागता को, पा लिया तब आपने ॥
उपदेश दे हितकर अनेकों, भव्य निज सम कर लिये ।
रविज्ञान किरण प्रकाश डालो, वीर! मेरे भी हिये ॥

। (शास्त्र वंदना)

स्याद्वाद, नय, षट् द्रव्य, गुण, पर्याय और प्रमाण का ।
जड़कर्म चेतन बंध का, अरु कर्म के अवसान का ॥
कहकर स्वरूप यथार्थ जग का, जो किया उपकार है ।
उसके लिये जिनवाणी माँ को, वंदना शत बार है ॥
। (गुरु वंदना)
नि:संग हैं जो वायुसम, निर्लेप हैं आकाश से ।
निज आत्म में ही विहरते, जीवन न पर की आस से ॥
जिनके निकट सिंहादि पशु भी, भूल जाते क्रूरता ।
उन दिव्य गुरुओं की अहो! कैसी अलौकिक शूरता ॥
स्वसंवेदनसिद्धाय जिनाय परमात्मने
शुद्धजीवास्तिकायाय नित्यानंदचिदे नम: ॥1-ज.आ.॥
सहजानन्द चैतन्य-प्रकाशाय महीयसे
नमोऽनेकान्त-विश्रान्त-महिम्ने परमात्मने ॥1॥
दुर्निवार-नयानीक-विरोध-ध्वंस-नौषधि:
स्यात्कार-जीविता जीयाज्जैनी सिद्धान्त-पद्धति: ॥2॥
सम्यग्ज्ञाना-मल-ज्योतिर्जननी द्वि-नयाश्रया
अथात: समय-व्याख्या संक्षेपेणाऽभिधियते ॥3॥
पन्चास्तिकाय-षड्-द्रव्य-प्रकारेण प्रारूपणम्
पूर्वं मूल-पदार्थानामिह सुत्रकृता कृतम् ॥4॥
जीवाजीवद्विपर्यायरुपाणां चित्रवत्-र्मनाम्
ततोनवपदार्थानां व्यवस्था प्रतिपादिता ॥5॥
ततस्तत्त्व-परिज्ञान-पूर्वेण त्रितयात्मना
प्रोक्ता मार्गेण कल्याणी मोक्ष-प्राप्तिर-पश्चिमा ॥6-अ.आ.॥
अन्वयार्थ :

मंगलाचरण

इंदसदवंदियाणं तिहुवणहिदमधुरविसदवक्काणं ।
अंतातीदगुणाणं णमो जिणाणं जिदभवाणं ॥1॥
शतइन्द्र वन्दित त्रिजगहित निर्मल मधुर जिनके वचन
अनन्त गुणमय भवजयी जिननाथ को शत-शत नमन ॥१॥
अन्वयार्थ : सौ इन्द्रों से पूजित, तीनों लोकों को हितकर, मधुर और विशद वचनों युक्त, अनन्त गुणों से सम्पन्न, जितभवी (संसार को जीतनेवाले) जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार हो ।

शास्त्र का प्रयोजन

समणमुहुग्गदमट्ठं चदुगदिविणिवारणं सणिव्वाणं ।
एसो पणमिय सिरसा समयमिणं सुणह वोच्छामि ॥2॥
सर्वज्ञ भाषित भवनिवारक मुक्ति के जो हेतु हैं
उन जिनवचन को नमन कर मैं कहूँ तुम उनको सुनो ॥२॥

अन्वयार्थ : श्रमण के मुख से निकले हुए अर्थमय, चतुर्गति का निवारण करनेवाले, निर्वाण सहित (निर्वाण को कारणभूत) इस समय को (सिरसा) प्रणाम कर मैं इसे कहूँगा, तुम सुनो! ।

पंचास्तिकाय-संक्षिप्त व्याख्यान

समवाओ पंचण्हं समयमिणं जिणवरेहिं पण्णत्तं ।
सो चेव हवदि लोगो तत्तो अमओ अलोयक्खं ॥3॥
पन्चास्तिकाय समूह को ही समय जिनवर ने कहा
यह समय जिसमें वर्तता वह लोक शेष अलोक है ॥३॥
अन्वयार्थ : पाँच अस्तिकायों का समवायरूप समय जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहा गया है, वही लोक है तथा उससे आगे असीम अलोक नामक आकाश है।

पाँच अस्तिकायों के विशेष नाम

जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मं तहेव आयासं । ।
अत्थित्तम्हि य णियदा अणण्णमइया अणुमहंता ॥4॥
आकाश पुद्गल जीव धर्मअधर्म ये सब काय हैं
ये हैं नियत अस्तित्वमय अरु अणुमहान अनन्य हैं ॥४॥
अन्वयार्थ : जीव, पुद्गलकाय, धर्म, अधर्म और आकाश अस्तित्व में नियत, अनन्यमय और अणुमहान है।

अस्तित्व और कायत्व किसप्रकार ?

जेसिं अत्थिसहाओ गुणेहिं सह पज्जएहिं विविएहिं ।
ते होंति अत्थिकाया णिप्पण्णं जेहिं तेलोक्कं ॥5॥
अनन्यपन धारण करें जो विविध गुणपर्याय से
उन अस्तिकायों से अरे त्रैलोक यह निष्पन्न है ॥५॥
अन्वयार्थ : जिनका विविध गुणों और पर्यायों के साथ अस्तिस्वभाव है, वे अस्तिकाय हैं। उनसे तीन लोक निष्पन्न है।

पंचास्तिकायों और काल की द्रव्य संज्ञा

ते चेव अत्थिकाया तिक्कालियभावपरिणदा णिच्चा ।
गच्छंति दवियभावं परियट्टणलिंगसंजुत्ता ॥6॥
त्रिकालभावी परिणमित होते हुए भी नित्य जो
वे पंच अस्तिकाय वर्तनलिंग सह षट् द्रव्य हैं ॥६॥
अन्वयार्थ : त्रिकालवर्ती भावों से परिणमित, नित्य वे ही अस्तिकाय, परिवर्तन लिंग (काल) सहित द्रव्य भाव को प्राप्त होते हैं।

द्रव्यों के एक-क्षेत्रावगाह

अण्णोण्णं पविसंता देंता ओगासमण्णमण्णस्स ।
मेलंता वि य णिच्चं सगसब्भावं ण विजहंति ॥7॥
परस्पर मिलते रहें अरु परस्पर अवकाश दें
जल-दूध वत् मिलते हुए छोड़ें न स्व-स्व भाव को ॥७॥
अन्वयार्थ : वे परस्पर एक दूसरे में प्रवेश करते हैं, एक दूसरे को अवकाश देते हैं, परस्पर में मिलते भी हैं; तथापि सदैव अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते हैं।

सत्ता का स्वरूप

सत्ता सव्वपदत्था सविस्सरूवा अणंतपज्जाया ।
भंगुप्पादधुवत्ता सप्पडिवक्खा हवदि एक्का ॥8॥
सत्ता जनम-लय-ध्रौव्यमय अर एक सप्रतिपक्ष है
सर्वार्थ थित सविश्वरूप-रु अनन्त पर्ययवंत है ॥८॥

अन्वयार्थ : सत्ता सर्व पदार्थों में स्थित, सविश्वरूप, अनन्त पर्यायमय, भंग-उत्पाद-ध्रौव्य स्वरूप, सप्रतिपक्ष और एक है ।

सत्ता और द्रव्य में अभिन्नता

दवियदि गच्छदि ताइं ताइं सब्भावपज्जयाइं जं ।
दवियं तं भण्णंति हि अणण्णभूदं तु सत्तादो ॥9॥
जो द्रवित हो अर प्राप्त हो सद्भाव पर्ययरूप में
अनन्य सत्ता से सदा ही वस्तुत: वह द्रव्य है ॥९॥

अन्वयार्थ : उन-उन सद्भाव पर्यायों को जो द्रवित होता है, प्राप्त होता है, उसे द्रव्य कहते हैं; जो कि सत्ता से अनन्यभूत है।

द्रव्य-लक्षण तीन प्रकार से

दव्वं सल्लक्खणियं उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं ।
गुणपज्जयासयं वा जं तं भण्णंति सव्वण्हू ॥10॥
सद् द्रव्य का लक्षण कहा उत्पाद व्यय ध्रुव रूप वह
आश्रय कहा है वही जिनने गुणों अर पर्याय का ॥१०॥

अन्वयार्थ : जो सत लक्षणवाला है, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य संयुक्त है अथवा गुण-पर्यायों का आश्रय है, उसे सर्वज्ञ भगवान द्रव्य कहते हैं।

नयों द्वारा द्रव्य का लक्षण

उप्पत्ती य विणासो दव्वस्स य णत्थि अत्थि सब्भावो ।
वयमुप्पादधुवत्तं करेंति तस्सेव पज्जाया ॥11॥
उत्पाद-व्यय से रहित केवल सत् स्वभावी द्रव्य है
द्रव्य की पर्याय ही उत्पाद-व्यय-ध्रुवता धरे ॥११॥

अन्वयार्थ : द्रव्य का उत्पाद-विनाश नहीं है, सद्भाव है। विनाश, उत्पाद और ध्रुवता को उसकी ही पर्यायें करती हैं।

द्रव्य-पर्यायों में अभेद

पज्जयविजुदं दव्वं दव्वविमुत्ता य पज्जया णत्थि । ।
दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूवेंति ॥12॥
पर्याय विरहित द्रव्य नहीं नहि द्रव्य बिन पर्याय है
श्रमणजन यह कहें कि दोनों अनन्य-अभिन्न हैं ॥१२॥

अन्वयार्थ : पर्याय रहित द्रव्य और द्रव्य रहित पर्यायें नहीं होती हैं। दोनों का अनन्यभूत भाव / अभिन्नपना श्रमण प्ररूपित करते हैं।

द्रव्य और गुणों में अभेद

दव्वेण विणा ण गुणा गुणेहिं दव्वं विणा ण संभवदि ।
अव्वदिरित्तो भावो दव्वगुणाणं हवदि तम्हा ॥13॥
द्रव्य बिन गुण नहीं एवं द्रव्य भी गुण बिन नहीं

वे सदा अव्यतिरिक्त हैं यह बात जिनवर ने कही ॥१३॥

अन्वयार्थ : द्रव्य के बिना गुण नहीं हैं, गुणों के बिना द्रव्य संभव नहीं है; इसलिये द्रव्य और गुणों के अव्यतिरिक्त / अभिन्न भाव है।

प्रमाण सप्तभंगी

सिय अत्थि णत्थि उहयं अव्वत्तव्वं पुणो य तत्तिदयं ।

दव्वं खु सत्तभंगं आदेसवसेण संभवदि ॥14॥

स्यात् अस्ति-नास्ति-उभय अर अवक्तव्य वस्तु धर्म हैं

अस्ति-अवक्तव्यादि त्रय सापेक्ष सातों भंग हैं ॥१४॥

अन्वयार्थ : द्रव्य वास्तव में आदेश / कथन के वश से स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, उभय / स्यात अस्ति-नास्ति, स्यात् अवक्तव्य तथा पुन: उन तीनों रूप अर्थात् स्यात् अस्ति अवक्तव्य, स्यात् नास्ति अवक्तव्य और स्यात् अस्ति-नास्ति अवक्तव्य -- इसप्रकार सात भंगरूप है।

सत का विनाश नहीं, असत् का उत्पाद नहीं

भावस्स णत्थि णासो णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो ।

गुणपज्जएसु भावा उप्पादवये पकुव्वंति ॥15॥

सत्द्रव्य का नहिं नाश हो अरु असत् का उत्पाद ना

उत्पाद-व्यय होते सतत सब द्रव्य-गुण-पर्याय में ॥१५॥

अन्वयार्थ : भाव का नाश नहीं है, अभाव का उत्पाद नहीं है, भाव गुण पर्यायों में उत्पाद व्यय करते हैं।

गुण-पर्याय

भावा जीवादीया जीवगुणा चेदणा य उवओगा ।

सुरणरणारयतिरिया जीवस्स य पज्जया बहुगा ॥16॥

जीवादि ये सब भाव हैं जिय चेतना उपयोगमय

देव-नारक-मनुज-तिर्यक् जीव की पर्याय हैं ॥१६॥

अन्वयार्थ : जीवादि भाव हैं। चेतना और उपयोग जीव के गुण हैं तथा देव, मनुष्य, नारकी, तिर्यंच आदि अनेक जीव की पर्यायें हैं।

कथंचित उत्पाद-विनाश

मणुसत्तणेण णट्ठो देही देवो व होदि इदरो वा । ।

उभयत्थ जीवभावो ण णस्सदि ण जायदे अण्णो ॥17॥

मनुज मर सुरलोक में देवादि पद धारण करें

पर जीव दोनों दशा में ना नशे ना उत्पन्न हो ॥१७॥

अन्वयार्थ : मनुष्यत्व से नष्ट हुआ देही (शरीरधारी जीव) देव या अन्य रूप में उत्पन्न होता है; (परन्तु) इन दोनों (दशाओं) में जीव भाव नष्ट नहीं हुआ है और अन्य उत्पन्न नहीं हुआ है।

जीव का कथंचित जन्म-मरण

सो चेव जादि मरणं जादि ण णट्ठो ण चेव उप्पण्णो । ।

उप्पण्णो य विणट्ठो देवो मणुसोत्ति पज्जाओ ॥18॥

जन्मे-मरे नित द्रव्य ही पर नाश-उद्भव न लहे

सुर-मनुज पर्यय की अपेक्षा नाश-उद्भव हैं कहे ॥१८॥

अन्वयार्थ : वही उत्पन्न होता है, वही मरण को प्राप्त होता है; तथापि न वह नष्ट होता है और न उत्पन्न होता है; देव-मनुष्य आदि पर्यायें ही

उत्पन्न होती हैं, नष्ट होती हैं।

एवं सदो विणासो असदो भावस्स णत्थि उप्पादो । ।
तावदिओ जीवाणं देवो मणुसोत्ति गदिणामो ॥19॥
इस भांति सत् का व्यय नहिं अर असत् का उत्पाद नहिं
गति नाम नामक कर्म से सुर-नर-नरक - ये नाम हैं ॥१९॥

अन्वयार्थ : [एवं] इसप्रकार [जीवस्य] जीव को [सतः विनाशः] सत् का विनाश और[असतः उत्पादः] असत् का उत्पाद [न अस्ति] नहीं है; ('देव जन्मता है और मनुष्य मरता है' - ऐसा कहा जाता है उसका यह कारण है कि) [जीवानाम्] जीवों की [देवः मनुष्यः] देव, मनुष्य [इति गतिनाम] ऐसा गति नामकर्म [तावत्] उतने ही काल का होता है ।

सिद्ध भगवान में कथंचित उत्पाद-व्यय

णाणावरणादीया भावा जीवेण सुट्ठु अणुबद्धा । ।
तेसिमभावं किच्चा अभूदपुव्वो हवदि सिद्धो ॥20॥
जीव से अनुबद्ध ज्ञानावरण आदिक भाव जो
उनका अशेष अभाव करके जीव होते सिद्ध हैं ॥२०॥

अन्वयार्थ : [ज्ञानावरणाद्याः भावाः] ज्ञानावरणादि भाव [जीवेन] जीव के साथ [सुष्ठु] भलीभाँति [अनुबद्धाः] अनुबद्ध है; [तेषाम् अभावं कृत्वा] उनका अभाव करके वह [अभूतपूर्वः सिद्धः] अभूतपूर्व सिद्ध [भवति] होता है ।

एवं भावाभावं भावाभावं अभावभावं च । ।
गुणपज्जयेहिं सहिदो संसरमाणो कुणदि जीवो ॥21॥
भाव और अभाव भावाभाव अभावभाव में
यह जीव गुणपर्यय सहित संसरण करता इसतरह ॥२१॥

अन्वयार्थ : [एवम्] इसप्रकार [गुणपर्ययैः सहित] गुण-पर्याय सहित [जीवः] जीव [संसरन्] संसरण करता हुआ [भावम्] भाव, [अभावम्] अभाव, [भावाभावम्] भावाभाव [च] और [अभावभावम्] अभावभाव को [करोति] करता है ।

पाँच अस्तिकाय का विशेष वर्णन

जीवा पोग्गलकाया आयासं अत्थिकाइया सेसा ।
अमया अत्थित्तमया कारणभूदा दु लोगस्स ॥22॥
जीव-पुद्गल धरम-अधरम गगन अस्तिकाय सब
अस्तित्वमय हैं अकृत कारणभूत हैं इस लोक के ॥२२॥

अन्वयार्थ : [जीवाः] जीव, [पुद्गलकायाः] पुद्गलकाय, [आकाशम्] आकाश और [शेषौअस्तिकायौ] शेष दो अस्तिकाय [अमयाः] अकृत हैं, [अस्तित्वमयाः] अस्तित्वमय हैं और [हि]
वास्तव में [लोकस्य कारणभूताः] लोक के कारणभूत हैं ।

काल द्रव्य का प्रतिपादन

सब्भाव सभावाणं जीवाणं तह य पोग्गलाणं च ।
परियट्टणसंभूदो कालो णियमेण पण्णत्तो ॥23॥
सत्तास्वभावी जीव पुद्गल द्रव्य के परिणमन से
है सिद्धि जिसकी काल वह कहा जिनवरदेव ने ॥२३॥

अन्वयार्थ : [सद्भावस्वभावानाम्] सत्ता स्वभाववाले [जीवानाम् तथा एव पुद्गलानाम् च] जीव और पुद्गलों के [परिवर्तनसम्भूतः] परिवर्तन

से सिद्ध होने वाला [कालः] ऐसा काल [नियमेन प्रज्ञप्तः] (सर्वज्ञों द्वारा) नियम (निश्चय) से उपदेश दिया गया है ।

निश्चय-काल

ववगद पणवण्णरसो ववगददोअट्ठगंधफासो य ।
अगुरुलहुगो अमुत्तो वट्टणलक्खो य कालोत्ति ॥24॥
रस-वर्ण पंचरु फरस अठ अर गंध दो से रहित है ।
अगुरुलघुक अमूर्त युत अरु काल वर्तन हेतु है ॥२४॥

अन्वयार्थ : [कालः इति] काल (निश्चयकाल) [व्यपगतपञ्चवर्णरसः] पाँच वर्ण और पाँच रस रहित, [व्यपगतद्विगन्धाष्टस्पर्शः च] दो गंध और आठ स्पर्श रहित, [अगुरुलघुकः] अगुरुलघु, [अमूर्तः] अमूर्त [च] और [वर्तनलक्षणः] वर्तना लक्षणवाला है ।

व्यवहार-काल

समओ णिमिसो कट्ठा कलाय णाली तदो दिवारत्ती । (24)
मासोडु अयण संवच्छरोत्ति कालो परायत्तो ॥25॥
समय-निमिष-कला-घड़ी दिनरात-मास-ऋतु-अयन ।
वर्षादि का व्यवहार जो वह पराश्रित जिनवर कहा ॥२४॥

अन्वयार्थ : [समयः] समय, [निमिषः] निमेष, [काष्ठा] काष्ठा, [कला च] कला, [नाली] घड़ी, [ततः दिवारात्रः] अहोरात्र, (दिवस), [मासर्त्वयनसंवत्सरम्] मास, ऋतु, अयन और वर्ष - [इति कालः] ऐसा जो काल (अर्थात् व्यवहारकाल) [परायत्तः] वह पराश्रित है ।

व्यवहारकाल की पराधीनता

णत्थि चिरं वा खिप्पं मत्तारहियं तु सा वि खलु मत्ता । (25)
पोग्गलदव्वेण विणा तम्हा कालो पडुच्चभवो ॥26॥
विलम्ब अथवा शीघ्रता का ज्ञान होता माप से ।
माप होता पुद्गलाश्रित काल अन्याश्रित कहा ॥२५॥

अन्वयार्थ : [चिरं वा क्षिप्रं] 'चिर' अथवा 'क्षिप्र' ऐसा ज्ञान (अधिक काल अथवा अल्पकाल ऐसा ज्ञान) [मात्रारहितं तु] परिमाण बिना (काल के माप बिना) [न अस्ति] नहीं होता;
[सा मात्रा अपि] और वह परिमाण [खलु] वास्तव में [पुद्गलद्रव्येण विना] पुद्गलद्रव्य के बिना नहीं होता; [तस्मात्] इसलिये [कालः प्रतीत्यभवः] काल आश्रितरूप से उपजनेवाला है (**अर्थ**ात् व्यवहारकाल पर का आश्रय करके उत्पन्न होता है) ।

जीवास्तिकाय का व्याख्यान

जीवो त्ति हवदि चेदा उवओगविसेसिदो पहू कत्ता । (26)
भोत्ता सदेहमत्तो ण हि मुत्तो कम्मसंजुत्तो ॥27॥
आत्मा है जीव-देह प्रमाण चित्-उपयोगमय ।
अमूर्त कर्त्ता-भोक्ता प्रभु कर्म से संयुक्त है ॥२६॥

अन्वयार्थ : [जीवः] (संसारस्थित) जीव [चेतयिता] चेतयिता [चेतनेवाला] है, [उपयोगविशेषितः] उपयोगलक्षित है, [प्रभुः] प्रभु है, [कर्ता] कर्ता है, [भोक्ता] भोक्ता है, [देहमात्रः] देहप्रमाण है, [न हि मूर्तः] अमूर्त है [च] और [कर्मसंयुक्तः] कर्मसंयुक्त [इति भवति] ऐसा होता है ।

मुक्त अवस्था का निरुपाधि-स्वरूप

कम्ममलविप्पमुक्को उड्ढं लोगस्स अंतमधिगंता । (27)

सो सव्वणाणदरिसी लहइ सुहमणिंदियमणंतं ॥28॥
कर्म मल से मुक्त आतम मुक्ति कन्या को वरे ।
सर्वज्ञता सर्वदर्शिता सह अनन्त-सुख अनुभव करे ॥२७॥
अन्वयार्थ : कर्ममल से विप्रमुक्त, ऊर्ध्व-लोक के अन्त को प्राप्त वे सर्वज्ञ-सर्वदर्शी आत्मा अनन्त अतीन्द्रिय सुख का अनुभव करते हैं ।
जादो सयं स चेदा सव्वण्हू सव्वलोगदरिसी य । (28)
पावदि इंदियरहिदं अव्वाबाहं सगममुत्तं ॥29॥
आतम स्वयं सर्वज्ञ-सर्वदर्शित्व की प्राप्ति करे ।
अर स्वयं अव्याबाध एवं अतीन्द्रिय सुख अनुभवे ॥२८॥
अन्वयार्थ : वह चेतयिता स्वयं सर्वज्ञ और सर्व-लोक-दर्शी होता हुआ, अपने अतीन्द्रिय, अव्याबाध, अमूर्त सुख को प्राप्त करता है ।

व्यवहार से जीवत्व गुण

पाणेहिं चदुहिं जीवदि जीविस्सदि जो हु जीविदो पुव्वं । (29)
सो जीवो पाणा पुण बल मिंदियमाउ उस्सासो ॥30॥
श्वास आयु इन्द्रिबलमय प्राण से जीवित रहे ।
त्रय लोक में जो जीव वे ही जीव संसारी कहे ॥२९॥
अन्वयार्थ : जो चार प्राणों से जीता है, जिएगा और पहले जीता था, वह जीव है; तथा प्राण बल, इन्द्रिय, आयु और श्वासोच्छ्वास हैं ।

जीवों का स्वाभाविक प्रमाण तथा मुक्त / अमुक्त

अगुरुलहुगाणंता तेहिं अणंतेहिं परिणदा सव्वे । (30)
देसेहिं असंखादा सियलोगं सव्वमावण्णा ॥31॥
केचिच्च अणावण्णा मिच्छादंसणकसायजोग जुदा । (31)
विजुदा य तेहिं बहुगा सिद्धा संसारिणो जीवा ॥32॥
अगुरुलघुक स्वभाव से जिय अनन्त गुण मय परिणमें ।
जिय के प्रदेश असंख्य पर जिय लोकव्यापी एक है ॥३०॥
बन्धादि विरहित सिद्ध आस्रव आदि युत संसारि सब ।
संसारि भी होते कभी कुछ व्याप्त पूरे लोक में ॥३१॥
अन्वयार्थ : अगुरुलघुक अनंत हैं, उन अनन्तों द्वारा सभी परिणमित हैं, वे प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यात हैं । उनमें से कुछ तो कथंचित् सम्पूर्ण लोक को प्राप्त हैं और कुछ अप्राप्त हैं । अनेक जीव मिथ्यादर्शन, कषाय से सहित संसारी हैं तथा अनेक उनसे रहित सिद्ध हैं ।

संसारी जीव देह प्रमाण

जह पउमरायरयणं खित्तं खीरे पहासयदि खीरं । (32)
तह देही देहत्थो सदेहमेत्तं पभासयदि ॥33॥
अलप या बहु क्षीर में ज्यों पद्ममणि आकृति गहे ।
त्यों लघु-गुरु इस देह में ये जीव आकृतियाँ धरें ॥३२॥
अन्वयार्थ : जैसे दूध में पड़ा हुआ पद्म-राग-रत्न दूध को प्रकाशित करता है; उसी प्रकार देह में स्थित देही / संसारी जीव स्वदेह-मात्र प्रकाशित होता है ।

शरीर के अनुसार जीव की अवगाहना

सव्वत्थ अत्थि जीवो ण य एक्को एक्कगो य एक्कट्ठो । (33)

अज्झवसाणविसिट्ठो चिट्ठदि मलिणो रजमलेहिं ॥34॥
दूध-जल वत एक जिय-तन कभी भी ना एक हों ।
अध्यवसान विभाव से जिय मलिन हो जग में भ्रमें ॥३३॥
अन्वयार्थ : जीव सर्वत्र (सभी क्रमवर्ती शरीरों में) है तथा एक शरीर में (क्षीर-नीरवत्) एक रूप में रहता है; तथापि उसके साथ एकमेक नहीं है। अध्यवसान विशिष्ट वर्तता हुआ, रजमल (कर्ममल) द्वारा मलिन होने से वह भ्रमण करता है ।

सिद्धों की अवगाहना

जेसिं जीवसहाओ णत्थि अभावो य सव्वहा तस्स । (34)
ते होंति भिण्णदेहा सिद्धा वचिगोयरमदीदा ॥35॥
जीवित नहीं जड़ प्राण से पर चेतना से जीव हैं ।
जो वचन गोचर हैं नहीं वे देह विरहित सिद्ध हैं ॥३४॥
अन्वयार्थ : जिनके विभाव-प्राण धारण करने-रूप जीव-स्वभाव नहीं है, और उसका सर्वथा अभाव भी नहीं है; वे शरीर से भिन्न, वचनगोचर अतीत / वचनातीत सिद्ध हैं ।

सिद्धों में कार्य-कारण-भाव

ण कदाचिवि उप्पण्णो जम्हा कज्जं ण तेण सो सिद्धो । (35)
उप्पादेदि ण किंचिवि कारणमिह तेण ण स होहि ॥36॥
अन्य से उत्पाद नहिं इसलिए सिद्ध न कार्य हैं ।
होते नहीं हैं कार्य उनसे अत: कारण भी नहीं ॥३५॥
अन्वयार्थ : वे सिद्ध किसी से भी उत्पन्न नहीं हुए हैं, अत: कार्य नहीं हैं; तथा किसी को भी उत्पन्न नहीं करते, अत: वे कारण भी नहीं हैं ।

मुक्ति में भी जीव का सद्भाव

सस्सदमधमुच्छेदं भव्वमभव्वं च सुण्णमिदरं च । (36)
विण्णाणमविण्णाणं ण वि जुज्जदि असदि सब्भावे ॥37॥
सद्भाव हो न मुक्ति में तो ध्रुव-अध्रुवता ना घटे ।
विज्ञान का सद्भाव अर अज्ञान असत कैसे बनें? ॥३६॥
अन्वयार्थ : (मोक्ष में जीव का) सद्भाव न होने पर शाश्वत / नाशवान, भव्य (होने योग्य) / अभव्य (न होने योग्य), शून्य / अशून्य, विज्ञान और अविज्ञान (जीव में) घटित नहीं होते हैं ।

जीव का चेतना भाव

कम्माणं फलमेक्को एक्को कज्जं तु णाणमथमेक्को । (37)
वेदयदि जीवरासी चेदगभावेण तिविहेण ॥38॥
कोई वेदे कर्म फल को, कोई वेदे करम को ।
कोई वेदे ज्ञान को निज त्रिविध चेतक-भाव से ॥३७॥
अन्वयार्थ : तीन प्रकार के चेतक-भाव द्वारा एक जीव-राशि कर्मों के फल को, एक जीव-राशि कार्य को और एक जीव-राशि ज्ञान को चेतती है / वेदती है ।

त्रिविध चेतना के स्वामी

सव्वे खलु कम्मफलं थावरकाया तसा हि कज्जजुदं । (38)

पाणित्तमदिक्कंता णाणं विंदंति ते जीवा ॥39॥
थावर करम फल भोगते, त्रस कर्मफल युत अनुभवें
प्राणित्व से अतिक्रान्त जिनवर वेदते हैं ज्ञान को ॥३९॥
अन्वयार्थ : सभी स्थावर जीवसमूह कर्मफल का, त्रस कर्म सहित कर्मफल का वेदन करते हैं तथा प्राणित्व का अतिक्रमण कर गए वे जीव (सर्वज्ञ भगवान) ज्ञान का वेदन करते हैं।

जीव का उपयोग

उवओगो खलु दुविहो णाणेण य दंसणेण संजुत्तो । (39)
जीवस्स सव्वकालं अणण्णभूदं वियाणीहि ॥40॥
ज्ञान-दर्शन सहित चिन्मय द्विविध है उपयोग यह
ना भिन्न चेतनतत्व से है चेतना निष्पन्न यह ॥३९॥
अन्वयार्थ : वास्तव में जीव के सर्वकाल, अनन्यरूप से रहनेवाला, ज्ञान और दर्शन से संयुक्त दो प्रकार का उपयोग जानो ।

ज्ञानोपयोग के भेद

आभिणिसुदोधिमणकेवलाणि णाणाणि पंचभेयाणि । (40)
कुमदिसुदविभंगाणि य तिण्णि वि णाणेहिं संजुत्ते ॥41॥
मतिश्रुतावधि अर मन: केवल ज्ञान पाँच प्रकार हैं ।
कुमति कुश्रुत विभंग युत अज्ञान तीन प्रकार हैं ॥४०॥
अन्वयार्थ : आभिनिबोधिक (मतिज्ञान), श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञान-ये ज्ञान के पाँच भेद हैं; तथा कुमति, कुश्रुत, विभंग-ये तीन (अज्ञान) भी ज्ञान के साथ संयुक्त हैं ।
मदिणाणं पुण तिविहं उबलद्धी भावणं च उवओगो ।
तह एव चदुवियप्पं दंसणपुव्वं हवदि णाणं ॥42॥
उपलब्धि है अरु भावना, उपयोग से है वह त्रिविध ।
होता है दर्शनपूर्वक, मतिज्ञान वह ही चतुर्विध ॥४२॥
अन्वयार्थ : उपलब्धि, भावना और उपयोग के भेद से मतिज्ञान तीनप्रकार का है; उसीप्रकार वह चार प्रकार का है; तथा वह ज्ञान दर्शनपूर्वक होता है ।
सुदणाणं पुण णाणी भणंति लद्धी य भावणा चेव ।
उवओगणयवियप्पम णाणेण य वत्थु अत्थस्स ॥43॥
जो लब्धि भावनारूप ज्ञाता की अपेक्षा वस्तु से ।
व अंश से उपयोग नय मय श्रुतज्ञान कहें उसे ॥४३॥
अन्वयार्थ : लब्धि और भावना रूप जानने की अपेक्षा सम्पूर्ण वस्तु को जानने वाले उपयोग या प्रमाणरूप और वस्तु के एकदेश को जानने वाले नय विकल्परूप ज्ञान को ज्ञानी श्रुतज्ञान कहते हैं ।
ओहिं तहेव घेप्पदु देसं परमं च ओहिसव्वं च ।
तिण्णिवि गुणेण णियमा भवेण देसं तहा णियदं ॥44॥
सीमा सहित प्रत्यक्ष जाने, अवधि देश परम सकल ।
ये तीन गुणप्रत्यय नियम से, भवनियत स्व देशमय ॥४४॥
अन्वयार्थ : अवधिज्ञान उसी प्रकार अर्थात् प्रत्यक्ष रूप में मूर्त वस्तु को जानता है, देशावधि, परमावधि और सर्वावधि ये तीनों नियम से गुण प्रत्यय होते हैं तथा भव प्रत्यय नियत देश (देव- नरकगति) में होता है ।

विउलमदी पुण णाणं अज्जवणाणं च दुविह मण्णाणं ।
एदे संजमलद्धी उवओगे अप्पमत्तस्स ॥45॥
है मनःपर्यय द्विविध ॠजुमति, व विपुलमति ज्ञान से ।
होता सदा उपयोग, संयमलब्धियुत अप्रमत्त के ॥४५॥
अन्वयार्थ : मन:-पर्यय ज्ञान, ॠजुमति और विपुल-मति के भेद से दो प्रकार का है; तथा संयम-लब्धि युक्त अप्रमत्त जीव के विशुद्ध परिणाम में होता है ।
णाणं णेयणिमित्तिं केवलणाणं ण होदि सुदणाणं ।
णेयं केवलणाणं णाणाणाणं च णत्थि केवलिणो ॥46॥
है ज्ञेब से निरपेक्ष केवलज्ञान, श्रुतमय है नहीं ।
वह जानता सकलार्थ, ज्ञानाज्ञान केवलि के नहीं ॥४६॥
अन्वयार्थ : केवलज्ञान ज्ञेय निमित्तक ज्ञान नहीं है, वह श्रुतज्ञान भी नहीं है, सम्पूर्ण ज्ञेयों को जानने वाला केवलज्ञान है, केवली के ज्ञानाज्ञान नहीं है (सर्वथा ज्ञान ही है)।

तीन अज्ञान
मिच्छत्ता अण्णाणं अविरदिभावो य भावावरणा ।
णेयं पडुच्च काले तह दुण्णय दुप्पमाणं च ॥47॥
अज्ञान अविरति भाव भी मिथ्यात्व भावावरण से ।
मिथ्या सभी सब ज्ञान दुर्नय दुष्प्रमाण कहे गए ॥४७॥
अन्वयार्थ : मिथ्यात्व के कारण भाव आवरण से ज्ञान और विरतिभाव मिथ्यात्वरूप हो जाते हैं; ज्ञेयों को जानते समय (सभी नय) दुर्नय तथा (सभी से प्रमाण) दुष्प्रमाण कहलाते हैं ।

दर्शनोपयोग के भेद
दंसणमवि चक्खुजुदं अचक्खुजुदमवि य ओहिणा सहियं । (41)
अणिधणमणन्तविसयं केवलियं चावि पण्णत्तं ॥48॥
चक्षु-अचक्षु अवधि केवल दर्श चार प्रकार हैं ।
निराकार दरश उपयोग में सामान्य का प्रतिभास है ॥४१॥
अन्वयार्थ : दर्शन भी चक्षु-दर्शन, अचक्षु-दर्शन, अवधि-दर्शन और अनिधन / अविनाशी अनंत विषय वाले केवलदर्शन के भेद से चार प्रकार का कहा गया है ।

जीव और ज्ञान में अभेद
ण वियप्पदि णाणादो णाणी णाणाणि होंति णेगाणि । (42)
तम्हा दु विस्सरूवं भणियं दवियत्ति णाणीहिं ॥49॥
ज्ञान से नहिं भिन्न ज्ञानी तदपि ज्ञान अनेक हैं ।
ज्ञान की ही अनेकता से जीव विश्व स्वरूप है ॥४२॥
अन्वयार्थ : ज्ञानी को ज्ञान से पृथक् नहीं किया जा सकता है । ज्ञान अनेक हैं, इसलिये ज्ञानियों ने द्रव्य को विश्वरूप / अनेक रूप कहा है ।

द्रव्य का गुण में सर्वथा भेद में दोष
जदि हवदि दव्वदमण्णं गुणदो हि गुणा य दव्वदो अण्णे । (43)

दव्वाणंतियमहवा दव्वाभावं पकुव्वंति ॥50॥
द्रव्य गुण से अन्य या गुण अन्य माने द्रव्य से ।
तो द्रव्य होंय अनन्त या फिर नाश ठहरे द्रव्य का ॥४३॥
अन्वयार्थ : यदि द्रव्य गुण से (सर्वथा) अन्य हो तथा गुण द्रव्य से अन्य हों तो (या तो) द्रव्य की अनन्तता होगी या द्रव्य का अभाव हो जाएगा ।

द्रव्य और गुण के अभिन्न प्रदेश

अविभक्तमणण्णत्तं दव्वगुणाणं विभत्तमण्णत्तं । (44)
णेच्छन्ति णिच्चयण्हू तव्विवरीदं हि वा तेसिं ॥51॥
द्रव्य अर गुण वस्तुत: अविभक्तपने अनन्य हैं ।
विभक्तपन से अन्यता या अनन्यता नहिं मान्य है ॥४४॥
अन्वयार्थ : द्रव्य और गुणों के अविभक्तरूप अनन्यता है । निश्चय के ज्ञाता उनके (द्रव्य-गुणों के) विभक्तरूप अन्यता या उससे विपरीत विभक्तरूप अनन्यता स्वीकार नहीं करते हैं ।

भेद में भी कथंचित अभेद का समर्थन

ववदेसा संठाणा संखा विसया य होंति ते बहुगा । (45)
ते तेसिमणण्णत्ते अण्णत्ते चावि विज्जन्ते ॥52॥
संस्थान संख्या विषय बहुविध द्रव्य के व्यपदेश जो ।
वे अन्यता की भाँति ही, अनन्यपन में भी घटे ॥४५॥
अन्वयार्थ : वे व्यपदेश, संस्थान, संख्या और विषय अनेक हैं; तथापि वे उनके (द्रव्य-गुणों के) अनन्यत्व-अन्यत्व में भी विद्यमान रहते हैं ।

निश्चय से भेदाभेद का उदाहरण

णाणं धणं च कुव्वदि धणिणं जह णाणिणं च दुविधेहिं । (46)
भण्णंति तह पुधत्तं एयत्तं चावि तच्चण्हू ॥53॥
धन से धनी अरु ज्ञान से ज्ञानी द्विविध व्यपदेश है ।
इस भाँति ही पृथकत्व अर एकत्व का व्यपदेश है ॥४६॥
अन्वयार्थ : जिस प्रकार ज्ञान और धन (जीव को) ज्ञानी और धनी -- दो प्रकार से करते हैं; उसीप्रकार तत्त्वज्ञ पृथक्त्व और एकत्व कहते हैं ।

ज्ञान-ज्ञानी के सर्वथा भेद में दोष

णाणी णाणं च तहा अत्थंतरि दो दु अण्णमण्णस्स । (47)
दोण्हं अचेदणत्तं पसजदि सम्मं जिणावमदं ॥54॥
यदि होय **अर्थ**ान्तरपना, अन्योन्य ज्ञानी-ज्ञान में ।
दोनों अचेतनता लहें, संभव नहीं अत एव यह ॥४७॥
अन्वयार्थ : यदि ज्ञानी और ज्ञान सदा परस्पर अर्थान्तरभूत / पूर्ण भिन्न हों तो दोनों को अचेतनता का प्रसंग आएगा; जो सम्यक् प्रकार से जिनों को सम्मत नहीं है ।

ज्ञान-ज्ञानी में समवाय सम्बन्ध का निषेध

ण हि सो समवायादो अत्थंतरिदो दु णाणी । (48)

अण्णाणित्ति य वयणं एयत्तपसाधगं होदि ॥55॥
प्रथक् चेतन ज्ञान से समवाय से ज्ञानी बने ।
यह मान्यता नैयायिकी जो युक्तिसंगत है नहीं ॥४८॥
अन्वयार्थ : ज्ञान से अर्थान्तरभूत वह समवाय से भी ज्ञानी नहीं हो सकता । 'अज्ञानी' ऐसा वचन ही उनके एकत्व को सिद्ध करता है ।

गुण-गुणी के कथंचित् एकत्व

समवत्ती समवाओ अपुधब्भूदो य अजुदसिद्धो य । (49)
तम्हा दव्वगुणाणं अजुदा सिद्धित्ति णिदिट्ठा ॥56॥
समवर्तिता या अयुतता अप्रथकत्व या समवाय है ।
सब एक ही है - सिद्ध इससे अयुतता गुण-द्रव्य में ॥४९॥
अन्वयार्थ : समवर्तित्व, समवाय, अपृथग्भूतत्व और अयुतसिद्धत्व - ये एकार्थवाची हैं; इसलिए द्रव्य-गुणों के अयुतसिद्धि है -- ऐसा कहा है ।

द्रव्य-गुणों के कथंचित् अभेद में दृष्टांत

वण्णरसगंधफासा परमाणुपरूविदा विसेसेहिं । (50)
दव्वादो य अणण्णा अण्णत्तपयासगा होंति ॥57॥
दंसणणाणाणि तहा जीवणिबद्धाणि णण्णभूदाणि । (51)
ववदेसदो पुधत्तं कुव्वन्ति हि णो सहावादो ॥58॥
ज्यों वर्ण आदिक बीस गुण परमाणु से अप्रथक हैं ।
विशेष के व्यपदेश से वे अन्यत्व को द्योतित करें ॥५०॥
त्यों जीव से संबद्ध दर्शन-ज्ञान जीव अनन्य हैं ।
विशेष के व्यपदेश से वे अन्यत्व को घोषित करें ॥५१॥
अन्वयार्थ : जैसे परमाणु में प्ररूपित; द्रव्य से अनन्य वर्ण, रस, गंध, स्पर्श विशेषों द्वारा अन्यत्व के प्रकाशक होते हैं; उसीप्रकार जीव में निबद्ध; अनन्यभूत दर्शन, ज्ञान व्यपदेश से पृथक्त्व करते हैं; स्वभाव से नहीं।

गुणमयी जीवों की संख्या

जीवा अणाइणिहणा संता णंता य जीवभावादो । (52)
सब्भावदो अणंता पंचग्गगुणप्पहाणा य ॥59॥
है अनादि-अनन्त आतम पारिणामिक भाव से ।
सादि-सान्त के भेद पड़ते उदय मिश्र विभाव से ॥५२॥
अन्वयार्थ : जीव जीव-भाव की अपेक्षा अनादि, अनन्त, सांत और अनंत हैं । सद्भाव की अपेक्षा अनन्त और पाँच मुख्य गुणों की प्रधानता युक्त हैं ।

कथंचित उत्पाद-व्यय

एवं सदो विणासो असदो जीवस्स हवदि उप्पादो । (53)
इदि जिणवरेहिं भणियं अण्णोण्णविरुद्धमविरुद्धं ॥60॥
इस भाँति सत-व्यय अर असत उत्पाद होता जीव के ।
लगता विरोधाभास सा पर वस्तुत: अविरुद्ध है ॥५३॥
अन्वयार्थ : इसप्रकार जीव के सत का विनाश और असत का उत्पाद होता है; ऐसा परस्पर विरुद्ध होने पर भी अविरुद्ध स्वरूप जिनवरों

ने कहा है ।

जीव की नर-नारक आदि पर्याय का कारण
णेरइयतिरियमणुआ देवा इदि णामसंजुदा पयडी । (54)
कुव्वंति सदो णासं असदो भावस्स उप्पत्ती ॥61॥
तिर्यंच नारक देव मानुष नाम की जो प्रकृति हैं ।
सद्भाव का कर नाश वे ही असत् का उद्भव करें ॥५४॥
अन्वयार्थ : नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव-इन नामों से संयुक्त (नामकर्म की) प्रकृतियाँ सत भाव का नाश और असत भाव का उत्पाद करती हैं।

औदयिकादि पाँच भाव व्याख्यान
उदयेण उवसमेण य खयेण दुहिं मिस्सिदेण परिणामे । (55)
जुत्ता ते जीवगुणा बहुसुदसत्थेसु वित्थिण्णा ॥62॥
उदय उपशम क्षय क्षयोपशम पारिणामिक भाव जो ।
संक्षेप में ये पाँच हैं विस्तार से बहुविध कहे ॥५५॥
अन्वयार्थ : उदय, उपशम, क्षय, इन दोनों के मिश्र / क्षयोपशम और परिणाम से सहित वे जीव के गुण अनेक शास्त्रों में विस्तार से वर्णित हैं ।

कर्तृत्व की मुख्यता से व्याख्यान
कम्मं वेदयमाणो जीवो भावं करेदि जारिसयं । (56)
सो तस्स तेण कत्ता हवदित्ति य सासणे पढिदं ॥63॥
पुद्गल करम को वेदते, आतम करे जिस भाव को ।
उस भाव का वह जीव कर्ता, कहा जिनवर देव ने ॥५६॥
अन्वयार्थ : कर्म का वेदन करता हुआ जीव जैसा भाव करता है, वह उस रूप से उसका कर्ता है ऐसा शासन में कहा है ।

उदयागत द्रव्यकर्म, व्यवहार से रागादि परिणामों का कारण
कम्मेण विणा उदयं जीवस्स ण विज्जदे उवसमं वा । (57)
खइयं खओवसमियं तम्हा भावं तु कम्मकदं ॥64॥
पुद्गल करम बिन जीव के उदयादि भाव होते नहीं ।
इससे करम कृत कहा उनको वे जीव के निजभाव हैं ॥५७॥
अन्वयार्थ : कर्म के उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम बिना जीव के (तत्सम्बन्धी भाव) नहीं होते हैं; अत: वे भाव कर्म-कृत हैं ।

पूर्वपक्ष -- एकान्त से जीव को कर्म के अकर्तृत्व में दूषण
भावों जदि कम्मकदो आदा कम्मस्स होदि किह कत्ता । (58)
ण कुणदि अत्ता किंचिवि मुत्ता अण्णं सगं भावं ॥65॥
यदि कर्मकृत हैं जीव भाव तो कर्म ठहरे जीव कृत ।
पर जीव तो कर्त्ता नहीं निज छोड किसी पर भाव का ॥५८॥
अन्वयार्थ : यदि (सर्वथा) भाव कर्मकृत हों, तो आत्मा कर्म का कर्ता होना चाहिए; परन्तु वह कैसे हो सकता है? क्योंकि आत्मा अपने भाव को छोडकर अन्य कुछ भी नहीं करता है ।

परिहार

भावो कम्मणिमित्तो कम्मं पुण भावकरणं हवदि । (59)
ण दु तेसिं खलु कत्ता ण विणा भूदा दु कत्तारं ॥66॥
कर्म-निमित्तिक भाव होते अर कर्म भाव-निमित्त से ।
अन्योन्य नहि कर्ता तदपि, कर्ता बिना नहिं कर्म है ॥५९॥

अन्वयार्थ : (रागादि) भाव कर्मनिमित्तक हैं, कर्म (रागादि) भावनिमित्तक हैं; परन्तु वास्तव में उनके (परस्पर) कर्तापना नहीं है; तथा वे कर्ता के बिना भी नहीं होते हैं।

अब उस ही व्याख्यान को आगम-संवाद से दृढ करते हैं

कुव्वं सगं सहावं अत्ता कत्ता सगस्स भावस्स । (60)
ण हि पोग्गलकम्माणं इदि जिणवयणं मुणेयव्वं ॥67॥
निजभाव परिणत आत्मा कर्ता स्वयं के भाव का ।
कर्ता न पुद्गल कर्म का यह कथन है जिनदेव का ॥६०॥

अन्वयार्थ : अपने भाव को कर्ता हुआ आत्मा वास्तव में अपने भाव का ही कर्ता है, पुद्गल कर्मों का नहीं- ऐसा जिनवचन जानना चाहिए।

निश्चयनय से अभेद षट्कारक

कम्मं पि सयं कुव्वदि सगेण भावेण सम्ममप्पाणं । (61)
जीवो वि य तारिसओ कम्मसहावेण भावेण ॥68॥
कार्मण अणु निज कारकों से करम पर्यय परिणमें ।
जीव भी निज कारकों से विभाव पर्यय परिणमें ॥६१॥

अन्वयार्थ : कर्म अपने स्वभाव से सम्यक् रूप में स्वयं को करता है; उसी प्रकार जीव भी कर्मस्वभाव (रागादि) भाव से सम्यक् रूप में स्वयं को करता है।

पूर्वपक्ष गाथा

कम्मं कम्मं कुव्वदि जदि सो अप्पा करेदि अप्पाणं । (62)
किह तस्स फलं भुंजदि अप्पा कम्मं च देदि फलं ॥69॥
यदि करम करते करम को आतम करे निज आत्म को ।
क्यों करम फल दे जीवको क्यों जीव भोगे करम फल ॥६२॥

अन्वयार्थ : यदि कर्म कर्म को करता है और वह आत्मा आत्मा को करता है तो आत्मा उसका फल क्यों भोगता है? और कर्म उसे फल क्यों देता है?

परिहार गाथाएं - द्रव्य कर्मों का कर्ता जीव नहीं

ओगाढगाढणिचिदो पोग्गलकायेंहिं सव्वदो लोगो । (63)
सुहुमेहिं बादरेहिं य णंताणंतेहिं विविहेहिं ॥70॥
करम पुद्गल वर्गणायें अनन्त विविध प्रकार कीं ।
अवगाढ-गाढ़-प्रगाढ़ हैं सर्वत्र व्यापक लोक में ॥६३॥

अन्वयार्थ : लोक सर्व प्रदेशों में विविध प्रकार के अनन्तानंत सूक्ष्म-बादरपुद्गलकायों द्वारा अवगाहित होकर गाढ़ भरा हुआ है।

पुद्गल उपादानरूप से स्वयं ही कर्मपने रूप परिणमित

अत्ता कुणदि सहावं तत्थ गया पोग्गला सहावेहिं । (64)
गच्छन्ति कम्मभावं अण्णोण्णागाहमवगाढा ॥71॥
आतम करे क्रोधादि तब पुद्गल अणु निजभाव से ।
करमत्व परिणत होय अर अन्योन्य अवगाहन करें ॥६४॥
अन्वयार्थ : आत्मा अपने (मोह-राग-द्वेषादि) भाव को करता है; (तब) अन्योन्य अवगाहरूप से प्रविष्ट वहाँ स्थित पुद्गल, अपने भावों से कर्मभाव को प्राप्त होते हैं।

दृष्टान्त

जह पोग्गलदव्वाणं बहुप्पयारेहिं खंधणिव्वत्ती । (65)
अकदा परेहिं दिट्ठा तह कम्माणं वियाणाहि ॥72॥
ज्यों स्कन्ध रचना पुद्गलों की अन्य से होती नहीं ।
त्यों करम की भी विविधता परकृत कभी होती नहीं ॥६५॥
अन्वयार्थ : जैसे पुद्गल-द्रव्यों सम्बन्धी अनेक प्रकार की स्कन्ध-रचना पर से अकृत (दूसरे से किए बिना / स्वत:) दिखाई देती है; उसी प्रकार कर्मों का जानना चाहिए।

कर्म-फल में भोक्तृत्व

जीवा पोग्गल काया अण्णोण्णागाढगहणपडिबद्धा । (66)
काले विजुज्जमाणा सुहदुक्खं दिंति भुंजंति ॥73॥
पर, जीव अर पुद्गल-करम पय-नीरवत प्रतिबद्ध हैं ।
करम फल देते उदय में जीव सुख-दुख भोगते ॥६६॥
अन्वयार्थ : जीव और पुद्गल (विशिष्ट प्रकार से) अन्योन्य अवगाह के ग्रहण द्वारा (परस्पर) प्रतिबद्ध हैं। अपने समय पर (उदयावस्था के समय) वे (पुद्गल) सुख-दु:ख देते हैं (और जीव उन्हें) भोगते हैं।

कर्तृत्व भोक्तृत्व का उपसंहार

तम्हा कम्मं कत्ता भावेण हि संजुदोध जीवस्स । (67)
भोत्ता दु हवदि जीवो चिदगभावेण कम्मफलं ॥74॥
इसलिए कर्ता कहा, चिद्भाव संयुत कर्म को ।
व भाव चेतक से करम, फल भोगता है जीव तो ॥७४॥
अन्वयार्थ : इसलिए जीव के भाव से संयुक्त कर्म कर्ता है तथा जीव चेतकभाव द्वारा कर्मफल का भोक्ता है।

कर्म-संयुक्तत्व कर्म-रहितत्व

एवं कत्ता भोक्ता होज्जं अप्पा सगेहिं कम्मेहिं । (68)
हिंडदि पारमपारं संसारं मोहसंच्छण्णो ॥75॥
इस तरह कर्मों की अपेक्षा जीव को कर्ता कहा ।
पर, जीव मोहाच्छन्न हो भमता फिरै संसार में ॥६८॥
अन्वयार्थ : इसप्रकार अपने कर्मों से कर्ता-भोक्ता होता हुआ, मोह से आच्छादित आत्मा पार (सान्त) और अपार (अनन्त) संसार में घूमता है।

प्रभुत्व का ही कर्मरहितत्व की मुख्यता से प्रतिपादन

उवसंतखीणमोहो मग्गं जिणभासिदेय समुवगदो । (69)
णाणाणुमग्गचारी णिव्वाणपुरं वजदि धीरो ॥76॥
जिन वचन से पथ प्राप्त कर उपशान्त मोही जो बने ।
शिवमार्ग का अनुसरण कर वे धीर शिवपुर को लहें ॥६९॥
अन्वयार्थ : जिनवचन द्वारा मार्ग को प्राप्तकर, उपशान्त-क्षीणमोह होता हुआ ज्ञानानुमार्गचारी धीर (पुरुष) निर्वाणपुर को प्राप्त होता है।

जीवास्तिकाय चूलिका

एक्को चेव महप्पा सो दुवियप्पो तिलक्खणों हवदि । (70)
चदुसंकमणो य भणिदो पंचग्गगुणप्पहाणो य ॥77॥
उछक्कावक्कमजुत्तो वजुत्तो सत्तभंगसव्भावों । (71)
अट्ठासवो णवत्थो जीवो दह ठाणिओ भणिओ ॥78॥
आतम कहा चैतन्य से इक, ज्ञान-दर्शन से द्विविध
उत्पाद-व्यय-ध्रुव से त्रिविध, अर चेतना से भी त्रिविध ॥७०॥
चतुपंच षट् व सप्त आदिक भेद दसविध जो कहे
वे सभी कर्मों की अपेक्षा जिय के भेद जिनवर ने कहे ॥७१॥
अन्वयार्थ : वह महात्मा एक ही है, दो भेदवाला है, तीनलक्षणमय है, चार चंक्रमण युक्त और पाँच मुख्य गुणों से प्रधान कहा गया है। वह उपयोग स्वभावी जीव छह अपक्रम युक्त, सात भंगों से सद्भाव वाला है, आठ का आश्रयभूत, नौपदार्थ रूप और दशस्थानगत कहा गया है।

मुक्त के ऊर्ध्वगति और संसारी जीवों के छहगति

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधेहिं सव्वदो मुक्को । (72)
उड्ढं गच्छदि सेसा विदिसावज्जं गदिं जंति ॥79॥
प्रकृति थिति अनुभाग बन्ध प्रदेश से जो मुक्त हैं ।
वे उर्द्धमगन स्वभाव से हैं प्राप्त करते सिद्धपद ॥॥७२॥
अन्वयार्थ : प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश बंधों से सर्वत: मुक्त जीव ऊर्ध्वगमन करते हैं; शेष जीव (भवान्तर को जाते समय) विदिशाओं को छो़डकर गति करते हैं।

पुद्गल-स्कन्ध व्याख्यान

खंदा य खंददेसा खंदपदेसा य होंति परमाणू । (73)
इदि ते चदुव्वियप्पा पोग्गलकाया मुणेदव्वा ॥80॥
स्कन्ध उनके देश अर परदेश परमाणु कहे ।
पुद्गलकाय के ये भेद चतु यह कहा जिनवर देव ने ॥७३॥
अन्वयार्थ : स्कंध, स्कंधदेश, स्कंधप्रदेश और परमाणु ये चार भेद वाले पुद्गलकाय हैंऐसा जानना चाहिए।

स्कन्ध आदि चार विकल्पों के लक्षण

खंदं सयलसमत्थं तस्स दु अद्धं भणंति देसोत्ति । (74)
अद्धद्धं च पदेसो परमाणू चेव अविभागी ॥81॥
स्कन्ध पुद्गल पिण्ड है अर अर्द्ध उसका देश है ।
अर्धार्द्ध को कहते प्रदेश अविभागी अणु परमाणु है ॥७४॥

अन्वयार्थ : सकलसमस्त (पुद्गल पिण्ड) स्कन्ध है, उसके आधे को देश कहते हैं। आधे का आधा प्रदेश है और परमाणु ही अविभागी है।

स्कन्धों के पुद्गलत्व व्यवहार

बादरसुहुमगदाणं खंदाणं पोग्गलोत्ति ववहारो । (75)
ते होंति छप्पयारा तेलोक्कं जेहिं णिप्पण्णं ॥82॥
सूक्ष्म-बादर परिणमित स्कन्ध को पुद्गल कहा ।
स्कन्ध के षटभेद से त्रैलोक्य यह निष्पन्न है ॥७५॥
अन्वयार्थ : बादर और सूक्ष्म से परिणत स्कन्धों में पुद्गल ऐसा व्यवहार है। वे छह प्रकार के हैं, जिनसे तीन लोक निष्पन्न है।

अब, उन्हीं छह भेदों का वर्णन करते हैं

पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसयकम्मपाओग्गा ।
कम्मातीदा एवं छब्भेया पोग्गला होंती ॥83॥
भू जल व छाया चार इन्द्रिय विषय कर्म प्रायोग्य हैं ।
वा कहे कर्म अयोग्य यों छह रूप पुद्गल स्कन्ध हैं ॥८३॥
अन्वयार्थ : पृथ्वी,जल, छाया, (चक्षु इन्द्रिय को छो़डकर शेष) चार इन्द्रिय के विषय, कर्म प्रायोग्य और कर्मातीत-इसप्रकार पुद्गल के छह भेद हैं।

परमाणु व्याख्यान

सव्वेसिं खंदाणं जो अंतो तं वियाण परमाणू । (76)
सो सस्सदो असद्दो एक्को अविभागि मुत्तिभवो ॥84॥
स्कन्ध का वह निर्विभागी अंश परमाणु कहा ।
वह एक शाश्वत मूर्तिभव अर अविभागी अशब्द है ॥७६॥
अन्वयार्थ : सभी स्कन्धों का जो अंतिम भाग है, उसे परमाणु जानो। वह शाश्वत, अशब्द, एक अविभागी और मूर्तिभव (मूर्त रूप से उत्पन्न होने वाला) जानना चाहिए।

पृथ्वी-आदि जाति की परमाणु जाति

आदेसमत्तमुत्तो धाउचउक्कस्स कारणं जो दु । (77)
सो णेओ परमाणू परिणामगुणो सयमसद्दो ॥85॥
कथनमात्र से मूर्त है अर धातु चार का हेतु है ।
परिणामी तथा अशब्द जो परमाणु है उसको कहा ॥७७॥
अन्वयार्थ : जो आदेश मात्र से मूर्त है, चार धातुओं का कारण है, परिणाम गुण वाला और स्वयं अशब्द है, उसे परमाणु जानो।

शब्द पुद्गल-स्कन्ध की पर्याय

सद्दो खंदप्पभवो खंदो परमाणुसंगसंघादो । (78)
पुट्ठेसु तेसु जायादि सद्दो उप्पादगो णियदो ॥86॥
स्कन्धों के टकराव से शब्द उपजें नियम से ।
शब्द स्कन्धोत्पन्न है अर स्कन्ध अणु संघात है ॥७८॥
अन्वयार्थ : शब्द स्कन्ध-जन्य हैं । स्कन्ध परमाणुओं के समूह के संघात / मिलाप से बनता है । उन स्कन्धों के परस्पर स्पर्षित होने / टकराने पर शब्द उत्पन्न होते हैं; इस प्रकार वे नियम से उत्पन्न होने योग्य हैं ।

परमाणु के एक प्रदेशत्व

णिच्चो णाणवगासो ण सावगासो पदेसदो भेत्ता । (79)

खंदाणं वि य कत्ता पविभत्ता कालसंखाणं ॥87॥

अवकाश नहिं सावकाश नहिं अणु अप्रदेशी नित्य है ।

भेदक-संघातक स्कन्ध का अर विभाग कर्ता काल का ॥७९॥

अन्वयार्थ : प्रदेश की अपेक्षा परमाणु नित्य है, न वह अनवकाश है और न सावकाश है, स्कन्धों का भेत्ता / भेदन करने वाला है, कर्ता है, काल और संख्या का प्रविभाग करनेवाला है।

परमाणु द्रव्य में गुण-पर्याय का स्वरूप

एयरसवण्णगंधं दो फासं सद्दकारणमसद्दं । (80)

खंदंतरिदं दव्वं परमाणु तं वियाणाहि ॥88॥

एक वरण-रस गंध युत अर दो स्पर्श युत परमाणु है ।

वह शब्द हेतु अशब्द है, स्कन्ध में भी द्रव्याणु है ॥८०॥

अन्वयार्थ : जो एक रस, एक वर्ण, एक गंध, दो स्पर्श वाला है, शब्द का कारण और अशब्द है, स्कन्धों के अन्दर है, उसे परमाणु द्रव्य जानो।

पुदगलास्तिकाय उपसंहार

उवभोज्जमिंदिएहिं य इन्दियकाया मणो य कम्माणि । (81)

जं हवदि मुत्तिमण्णं तं सव्वं पोग्गलं जाणे ॥89॥

जो इन्द्रियों से भोग्य हैं अर काय-मन के कर्म जो ।

अर अन्य जो कुछ मूर्त हैं वे सभी पुद्गल द्रव्य हैं ॥८१॥

अन्वयार्थ : इन्द्रियों द्वारा उपभोग्य विषय, इन्द्रियाँ, शरीर, मन, कर्म और अन्य जो कुछ मूर्त है, वह सब पुद्गल जानो।

धर्मास्तिकाय का स्वरूप

धम्मत्थिकायमसं अवण्णगंधं असद्दमप्फासं । (82)

लोगागाढं पुट्ठं पिहुलमसंखादियपदेसं ॥90॥

धर्मास्तिकाय अवर्ण अरस अगंध अशब्द अस्पर्श है ।

लोकव्यापक पृथुल अर अखण्ड असंख्य प्रदेश है ॥८२॥

अन्वयार्थ : धर्मास्तिकाय अरस, अवर्ण, अगन्ध, अशब्द, अस्पर्श स्वभावी है; लोकव्यापक है, अखण्ड, विशाल और असंख्यातप्रदेशी है।

अब धर्म के ही शेष रहे स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं

अगुरुगलघुगेहिं सया तेहिं अणंतेहिं परिणदं णिच्चं । (83)

गतिकिरियाजुत्ताणं कारणभूदं सयमकज्जं ॥91॥

अगुरुलघु अंशों से परिणत उत्पाद-व्यय-ध्रुव नित्य है ।

क्रिया गति में हेतु है वह पर स्वयं ही अकार्य है ॥८३॥

अन्वयार्थ : वह उन अनन्त अगुरुलघुकों द्वारा नित्य परिणमित है, गतिक्रिया-युक्तों को कारणभूत और स्वयं अकार्य है।

धर्म के गतिहेतुत्व में दृष्टान्त

उदयं जह मच्छाणं गमणाणुग्गहयरं हवदि लोए । (84)

तह जीवपुग्गलाणं धम्मं दव्वं वियाणीहि ॥92॥
गमन हेतु भूत है ज्यों जगत में जल मीन को ।
त्यों धर्म द्रव्य है गमन हेतु जीव पुद्गल द्रव्य को ॥८४॥
अन्वयार्थ : जैसे लोक में जल मछलियों के गमन में अनुग्रह करता है; उसीप्रकार धर्मद्रव्य जीव-पुद्गलों के गमन में अनुग्रह करता है ऐसा जानो।

अधर्मास्तिकाय का स्वरूप

जह हवदि धम्मदव्वं तह जाणेह दव्वमधमक्खं । (85)
ठिदिकिरियाजुत्ताणं कारणभूदं तु पुढवीव ॥93॥
धरम नामक द्रव्यवत ही अधर्म नामक द्रव्य है ।
स्थिति क्रिया से युक्त को यह स्थितिकरण में निमित्त है ॥८५॥
अन्वयार्थ : जैसे धर्म द्रव्य है, उसीप्रकार अधर्म नामक द्रव्य भी जानो; परन्तु वह स्थिति-क्रिया-युक्त को पृथ्वी के समान कारणभूत है।

धर्माधर्म द्रव्य का अस्तित्व न मानने पर दूषण

जादो अलोगलोगो जेसिं सब्भावदो य गमणठिदी । (86)
दो वि य मया विभत्ता अविभत्ता लोयमेत्ता य ॥94॥
धरम अर अधरम से ही लोका-लोक गति-स्थिति बने ।
वे उभय भिन्न-अभिन्न भी अर सकल लोक प्रमाण है ॥८६॥
अन्वयार्थ : जिनके सद्भाव से लोक-अलोक का विभाग है, (जीव-पुद्गलों की) गति-स्थिति है, वे दोनों विभक्त और अविभक्त स्वरूप तथा लोकप्रमाण माने गए हैं।

गति-स्थितिहेतुत्व के विषय में धर्म-अधर्म अत्यन्त उदासीन

ण य गच्छदि धम्मत्थी गमणं ण करेदि अण्णदवियस्स । (87)
हवदि गदी स्स प्पसरो जीवाणं पोग्गलाणं च ॥95॥
होती गति जिस द्रव्य की स्थिति भी हो उसी की ।
वे सभी निज परिणाम से ठहरें या गति क्रिया करें ॥८७॥
अन्वयार्थ : धर्मास्तिकाय गमन नहीं करता है, अन्य द्रव्य को गमन नहीं कराता है, जीव और पुद्गलों की गति का प्रसर / उदासीन निमित्त मात्र होता है।

युक्ति

विज्जदि जेसिं गमणं ठाणं पुण तेसिमेव संभवदि । (88)
ते सगपरिणामेहिं दु गमणं ठाणं च कुव्वंति ॥96॥
जिनका होता गमन है होता उन्हीं का ठहरना ।
तो सिद्ध होता है कि द्रव्य चलते -ठहरते स्वयं से ॥८८॥
अन्वयार्थ : जिनके गमन होता है, उनके ही स्थिति सम्भव है; वे (गति-स्थितिमान पदार्थ) अपने परिणामों से ही गति और स्थिति करते हैं।

लोकालोकाकाश-स्वरूप

सव्वेसिं जीवाणं सेसाणं तह य पोग्गलाणं च । (89)
जं देदि विवरमखिलं तं लोए हवदि आगासं ॥97॥

जीव पुद्गल धरम आदिक लोक में जो द्रव्य हैं ।
अवकाश देता इन्हें जो आकाश नामक द्रव्य वह ॥८९॥
अन्वयार्थ : लोक में जीवों, पुद्गलों और उसीप्रकार शेष सभी द्रव्यों को जो सम्पूर्ण अवकाश देता है, वह आकाश है।

लोक-अलोक

जीवा पुग्गलकाया धम्माधम्मा य लोगदोणण्णा । (90)
तत्तो अणण्णमण्णं आयासं अंतवदिरित्तं ॥98॥
जीव पुद्गल काय धर्म अधर्म लोक अनन्य हैं ।
अन्त रहित आकाश इनसे अनन्य भी अर अन्य भी ॥९०॥
अन्वयार्थ : जीव, पुद्गलकाय, धर्म और अधर्म लोक अनन्य है, उस (लोक) से अनन्य और अन्य, अन्त रहित आकाश है।

धर्माधर्म सम्बन्धी पूर्वपक्ष के निराकरणार्थ

आयासं अवगासं गमणठिदिकारणेहिं देदि जदि । (91)
उड्ढंगदिप्पधाणा सिद्धा चिट्ठन्ति किध तत्थ ॥99॥
अवकाश हेतु नभ यदि गति-थिति कारण भी बने ।
तो ऊर्ध्वगामी आत्मा लोकान्त में जा क्यों रुके ॥९१॥
अन्वयार्थ : यदि गति-स्थिति के कारण सहित आकाश अवकाश / स्थान देता है तो ऊर्ध्वगति में प्रधान सिद्ध वहाँ (लोकाकाश में) ही कैसे (क्यों) ठहरते हैं? (उनका गमन उससे आगे क्यों नहीं होता है?)।

स्थित पक्ष का प्रतिपादन

जम्हा उवरिट्ठाणं सिद्धाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं । (92)
तम्हा गमणट्ठाणं आयासे जाण णत्थि त्ति ॥100॥
लोकान्त में तो रहे आत्मा अष्ट कर्म अभाव कर ।
तो सिद्ध है कि नभ गति-थिति हेतु होता है नहीं ॥९२॥
अन्वयार्थ : जिसकारण सिद्धों की लोक के ऊपर स्थिति जिनवरों ने कही है, उसकारण आकाश में गति- स्थिति (हेतुता) नहीं है ऐसा जानो।

आकाश के गति-स्थिति हेतुत्व के अभाव में और भी कारण

जदि हवदि गमणहेदु आयासं ठाणकारणं तेसिं । (93)
पसयदि अलोगहाणि लोगस्सय अंतपरिवड्ढी ॥101॥
नभ होय यदि गतिहेतु अर थिति हेतु पुद्गल जीव को
तो हानि होय अलोक की अर लोक अन्त नहीं बने ॥९३॥
अन्वयार्थ : यदि आकाश उनके (जीव-पुद्गलों के) गमन का हेतु और स्थिति का हेतु हो तो अलोक की हानि और लोक के अन्त की परिवृद्धि (सब ओर से वृद्धि) का प्रसंग आएगा।

उपसंहार

तम्हा धम्माधम्मा गमणट्ठिदिकारणाणि णगासं । (94)
इदि जिणवरेहिं भणिदं लोगसहावं सुणंताणं ॥102॥
इसलिए गति थिति निमित्त आकाश हो सकता नहीं

जगत के जिज्ञासुओं को यह कहा जिनदेव ने ॥९४॥

अन्वयार्थ : इसलिए गति-स्थिति के कारण धर्म-अधर्म हैं, आकाश नहीं है; ऐसा लोकस्वभाव के श्रोताओं से जिनवरों ने कहा है।

धर्मादि तीनों के कथंचित एकत्व-पृथक्त्व का प्रतिपादन

धम्माधम्मागासा अपुधब्भूदा समाणपरिमाणा । (95)

पुधगुवलद्धविसेसा करेंति एयत्तमण्णत्तं ॥103॥

धर्माधर्म अर लोक का अवगाह से एकत्व है

अर पृथक् पृथक् अस्तित्व से अन्यत्व है भिन्नत्व है ॥९५॥

अन्वयार्थ : धर्म, अधर्म, आकाश (लोकाकाश) अपृथग्भूत, समान परिमाणवाले और पृथक् उपलब्धि विशेषवान हैं; इसलिए एकत्व और अन्यत्व को करते हैं।

चेतनाचेतन-मूर्तामूर्तत्व प्रतिपादन

आगासकालजीवा धम्माधम्मा य मुत्तिपरिहीणा । (96)

मुत्तं पुग्गलदव्वं जीवो खलु चेदणो तेसु ॥104॥

जीव अर आकाश धर्म अधर्म काल अमूर्त है

मूर्त पुद्गल जीव चेतन शेष द्रव्य अजीव हैं ॥९६॥

अन्वयार्थ : आकाश, काल, जीव, धर्म और अधर्म मूर्तरहित अमूर्त हैं; पुद्गलद्रव्य मूर्त है; उनमें वास्तव में जीव चेतन है।

सक्रिय-निष्क्रियत्व प्रतिपादन

जीवा पुग्गलकाया सह सक्किरिया हवंति ण य सेसा । (97)

पुग्गलकरणा जीवा खंदा खलु कालकरणेहिं दु ॥105॥

सक्रिय करण-सह जीव-पुद्गल शेष निष्क्रिय द्रव्य हैं

काल पुद्गल का करण पुद्गल करण है जीव का ॥९७॥

अन्वयार्थ : बाह्य करण सहित जीव और पुद्गल सक्रिय हैं; शेष द्रव्य सक्रिय नहीं, निष्क्रिय हैं। जीव पुद्गल-करणवाले हैं और वास्तव में स्कन्ध काल-करणवाले हैं।

प्रकारान्तर से मूर्तामूर्तत्व प्रतिपादन

जे खलु इन्दियगेज्झा विसया जीवेहिं हुन्ति ते मुत्ता । (98)

सेसं हवदि अमुत्तं चित्तं उभयं समादियदि ॥106॥

हैं जीव के जो विषय इन्द्रिय ग्राह्य वे सब मूर्त हैं

शेष सब अमूर्त हैं मन जानता है उभय को ॥९८॥

अन्वयार्थ : जीवों द्वारा जो इन्द्रियों से ग्रहण करने योग्य विषय हैं, वे वास्तव में मूर्त हैं, शेष अमूर्त हैं; चित्त इन दोनों को ग्रहण करता है / जानता है।

व्यवहार-निश्चय काल प्रतिपादन

कालो परिणामभवो परिणामो दव्वकालसंभूदो । (99)

दोण्हं एस सहावो कालो खणभंगुरो णियदो ॥107॥

क्षणिक है व्यवहार काल अरु नित्य निश्चय काल है

परिणाम से हो काल उद्भवकाल से परिणाम भी ॥९९॥

अन्वयार्थ : काल परिणाम से उत्पन्न होता है, परिणाम द्रव्य-काल से उत्पन्न होता है, यह दोनों का स्वभाव है; काल क्षणभंगुर तथा नित्य है।

नित्य / क्षणिक काल के भेद

कालो त्ति य ववदेसो सब्भावपरूवगो हवदि णिच्चो । (100)
उप्पण्णप्पद्धंसी अवरो दीहंतरट्ठाई ॥108॥
काल संज्ञा सत प्ररूपक नित्य निश्चय काल है
उत्पन्न-ध्वंसी सतत रह व्यवहार काल अनित्य है ॥१००॥
अन्वयार्थ : 'काल' ऐसा नाम सद्भाव का प्ररूपक है, अत: नित्य है। दूसरा काल उत्पन्न-ध्वंसी है; तथापि (परम्परा-अपेक्षा) दीर्घान्तरस्थायी / दीर्घकाल तक रहनेवाला भी कहा जाता है।

काल के द्रव्यत्व-अकायत्व का प्रतिपादन

एदे कालागासा धम्माधम्मा य पोग्गला जीवा । (101)
लब्भंति दव्वसण्णं कालस्स दु णत्थि कायत्तं ॥109॥
जीव पुद्गल धर्म-अधर्म काल अर आकाश जो
हैं 'द्रव्य' संज्ञा सर्व की कायत्व है नहिं काल को ॥१०१॥
अन्वयार्थ : ये काल, आकाश, धर्म और अधर्म, पुद्गल, जीव `द्रव्य' संज्ञा को प्राप्त करते हैं; परन्तु काल के कायत्व नहीं है।

भावना-फल प्रतिपादन

एवं पवयणसारं पंचत्थियसंगहं वियाणित्ता । (102)
जो मुयदि रागदोसे सो गाहदि दुक्खपरिमोक्खं ॥110॥
इस भांति जिनध्वनिरूप पंचास्ति प्रयोजन जानकार ।
जो जीव छोड़े राग-रुष वह छूटता भव-दु:ख से ॥१०२॥
अन्वयार्थ : इस प्रकार प्रवचन के सारभूत 'पंचास्तिकाय संग्रह' को विशेष-रूप से जानकर जो राग-द्वेष को छोडता है, वह दु:खों से परिमुक्त होता है ।

अब दु:ख से मोक्ष के कारण का क्रम कहते हैं

मुणिऊण एतदट्ठं तदणुगमणुज्जदो णिहणमोहो । (103)
पसमियरागद्दोसो हवदि हदपरावरो जीवो ॥111॥
इस शास्त्र के सारांश रूप शुद्धात्मा को जानकर ।
उसका करे जो अनुसरण, वह शीघ्र मुक्ति वपु वरै ॥१०३॥
अन्वयार्थ : इसके अर्थ को जानकर, उसके अनुगमन को उद्यत / अनुसरण करने के लिए प्रयत्नशील, मोह से रहित हो, राग-द्वेष को प्रशमित कर जीव पूर्वापर बंध से रहित होता है ।

नव-पदार्थ के भेद

अभिवंदिऊण सिरसा अपुणब्भवकारणं महावीरं । (104)
तेसिं पयत्थभंगं मग्गं मोक्खस्स वोच्छामि ॥112॥
मुक्तिपद के हेतु से शिरसा नमू महावीर को
पदार्थ के व्याख्यान से प्रस्तुत करूँ शिवमार्ग को ॥१०४॥
अन्वयार्थ : अपुनर्भव (मोक्ष) के कारण-भूत महावीर भगवान को शिर झुकाकर नमस्कार करके, उनके (छह द्रव्यों के) पदार्थ भंग को

और मोक्ष के मार्ग को कहूँगा ।

मोक्षमार्ग की सूचना

सम्मत्तणाणजुत्तं चारित्तं रागदोसपरिहीणं । (105)
मोक्खस्स हवदि मग्गो भव्वाणं लद्धबुद्धीणं ॥113॥
सम्यक्त्व ज्ञान समेत चारित राग-द्वेष विहीन जो
मुक्ति का मारग कहा भवि जीव हित जिनदेव ने ॥१०५॥
अन्वयार्थ : सम्यग्दर्शन-ज्ञान से सहित, रागद्वेष से परिहीन चारित्र लब्ध-बुद्धी भव्यों के मोक्ष का मार्ग है ।

व्यवहार सम्यग्दर्शन

एवं जिणपण्णत्ते सद्दहमाणस्स भावदो भावे ।
पुरिसस्साभिणिबोधे दंसणसद्दो हवदि जुत्ते ॥114॥
अन्वयार्थ : इसप्रकार जिनेन्द्र प्रणीत पदार्थों का भाव से / रुचि-रूप परिणाम से श्रद्धान करने वाले पुरुष / आत्मा के ज्ञान में दर्शन शब्द उचित है ।

सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का विशेष विवरण

सम्मत्तं सद्दहणं भावाणं तेसिमधिगमो णाणं । (106)
चारित्तं समभावो विसयेसु विरूढ़मग्गाणं ॥115॥
नव पदों के श्रद्धान को समकित कहा जिनदेव ने
वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान अर समभाव ही चारित्र है ॥१०५॥
अन्वयार्थ : भावों का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है, उनका अधिगम ज्ञान है, विरुढ मार्गियों का विषयों में समभाव चारित्र है ।

जीवादि नवपदार्थों का नाम और स्वरूप

जीवाजीवा भावा पुण्णं पावं च आसवं तेसिं । (107)
संवरणिज्जरबंधो मोक्खो य हवन्ति ते अट्ठा ॥116॥
फल जीव और अजीव तद्गत पुण्य एवं पाप हैं
आसरव संवर निर्जरा अर बन्ध मोक्ष पदार्थ हैं ॥१०६॥
अन्वयार्थ : जीव-अजीव (मूल) भाव हैं; उनके पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष -- ये अर्थ / पदार्थ होते हैं ।

जीव का स्वरूप

जीवा संसारत्था णिव्वादा चेदणप्पगा दुविहा । (108)
उवओगलक्खणा वि य देहादेहप्पवीचारा ॥117॥
संसारी अर सिद्धात्मा उपयोग लक्षण द्विविध
जग जीव वर्ते देह में अर सिद्ध देहातीत है ॥१०७॥
अन्वयार्थ : चेतनात्मक और उपयोग लक्षण-वाले जीव दो प्रकार के हैं संसारस्थ और सिद्ध । देह में प्रवीचार सहित संसारस्थ हैं तथा देह में प्रवीचार रहित सिद्ध हैं ।

पृथ्वीकाय आदि पाँच भेदों का प्रतिपादन

पुढवी य उदगमगणी वाउवणप्फदिजीवसंसिदा काया । (109)

देंति खलु मोहबहुलं फासं बहुगा वि ते तेसिं ॥118॥
भू जल अनल वायु वनस्पति काय जीव सहित कहे ।
बहु संख्य पर यति मोहयुत स्पर्श ही देती रहें ॥१०८॥
अन्वयार्थ : पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति जीव से संश्रित / सहित अनेक प्रकार के वे शरीर वास्तव में उन्हें (उन जीवों को) मोह से बहुल स्पर्श देते हैं ।

व्यवहार से अग्नि और वायुकायिक जीवों के त्रसपना

तित्थावरतणुजोगा अणिलाणलकाइया य तेसु तसा ।
मणपरिणामविरहिदा जीवा एइंदिया णेया ॥119॥
उनमें त्रय स्थावर तनु त्रस जीव अग्नि वायु युत ।
ये सभी मन से रहित हैं अर एक स्पर्शन सहित हैं ॥१०९॥
अन्वयार्थ : उनमें से तीन स्थावर शरीर के संयोग-वाले हैं । वायुकायिक और अग्निकायिक त्रस हैं । वे सभी मन परिणाम से विरहित एकेन्द्रिय जीव जानना चाहिए ।

पृथ्वीकायिक आदि पाँचों के एकेन्द्रियत्व

एदे जीवणिकाया पंचविहा पुढविकाइयादीया । (110)
मणपरिणामविराहिदा जीवा एगेंदिया भणिया ॥120॥
ये पृथ्वीकायिक आदि जीव निकाय पाँच प्रकार के ।
सभी मन परिणाम विरहित जीव एकेन्द्रिय कहे ॥११०॥
अन्वयार्थ : ये पृथ्वीकायिक आदि पाँच प्रकार के जीव-निकाय मन परिणाम से विरहित एकेन्द्रिय जीव हैं ।

एकेन्द्रियों के अस्तित्व के विषय में दृष्टांत

अंडेसु पवड्ढंता गब्भत्था माणुसा य मुच्छगया । (111)
जारिसया तारिसया जीवा एगेंदिया णेया ॥121॥
अण्डस्थ अर गर्भस्थ प्राणी ज्ञान-शून्य अचेत ज्यों ।
पंचविध एकेन्द्रि प्राणी ज्ञान-शून्य अचेत त्यों ॥१११॥
अन्वयार्थ : अण्डे में प्रवर्धमान (बढ़ते हुए),गर्भस्थ और मूर्छा को प्राप्त मनुष्य जैसे हैं; उसीप्रकार एकेन्द्रिय जीव जानना चाहिए ।

दो इन्द्रिय के भेद

संबुक्कमादुवाहा संखा सिप्पी अपादगा य किमी । (112)
जाणंति रसं फासं जे ते बेइंदिया जीवा ॥122॥
लट केंचुआ अर शंख शीपी आदि जिय पग रहित हैं
वे जानते रस स्पर्श को इसलिये दो इन्द्रि कहे ॥११२॥
अन्वयार्थ : जो रस और स्पर्श को जानने-वाले शंबूक, मातृवाह, शंख, सीप और पैर रहित कृमी आदि हैं, वे दोइन्द्रिय जीव हैं ।

तीन इन्द्रिय

जूगागुंभीमक्कणपिपीलिया विच्छियादिया कीडा । (113)
जाणंति रसं फासं गंधं तेइंदिया जीवा ॥123॥
चीटि-मकड़ी-लीख-खटमल बिच्छु आदिक जंतु जो

फरस रस अरु गंध जाने तीन इन्द्रिय जीव वे ॥११३॥

अन्वयार्थ : यूका (जूँ), कुंभी, मत्कुण (खटमल), पिपीलिका (चींटी), बिच्छू आदि कीट (जन्तु) तीन इन्द्रिय जीव स्पर्श, रस और गंध को जानते हैं ।

चार इन्द्रिय जीव

उद्दंमसयमक्खियमधुकरभमरा पतंगमादीया । (114)
रूपं रसं च गंधं फासं पुण ते वि जाणंति ॥124॥
मधुमक्सी भ्रमर पतंग आदि डांस मच्छर जीव जो
वे जानते हैं रूप को भी अत: चौइन्द्रिय कहें ॥११४॥

अन्वयार्थ : डाँस, मच्छर, मक्खी, मधुमक्खी, भँवरा, पतंगे आदि वे (चार इन्द्रिय जीव) रूप, रस, गंध, स्पर्श को जानते हैं ।

पंचेन्द्रिय जीव

सुरणरणारयतिरिया वण्णरसप्फासगंधसद्दण्हू । (115)
जलचरथलचरखचरा वलिया पचेंदिया जीवा ॥125॥
भू-जल-गगनचर सहित जो सैनी-असैनी जीव हैं
सुर-नर-नरक तिर्यचगण ये पंच इन्द्रिय जीव हैं ॥११५॥

अन्वयार्थ : स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द को जाननेवाले देव, मनुष्य, नारकी तथा जलचर, थलचर, नभचर रूप तिर्यंच बलवान पंचेन्द्रिय जीव हैं ।

उपसंहार

देवा चउण्णिकाया मणुया पुण कम्मभोगभूमीया । (116)
तिरिया बहुप्पयारा णेरइया पुढविभेयगदा ॥126॥
नर कर्मभूमिज भोग भूमिज, देव चार प्रकार हैं
तिर्यंच बहुविध कहे जिनवर, नरक सात प्रकार हैं ॥११६॥

अन्वयार्थ : देव चार निकाय-वाले हैं, मनुष्य कर्म-भूमिज और भोग-भूमिज हैं, तिर्यंच अनेक प्रकार के हैं और नारकी पृथ्वी-भेद-गत हैं ।

गति नाम-कर्म का कार्य

खीणे पुव्वणिबद्धे गदिणामे आउसे च ते वि खलु । (117)
पापुण्णंति य अण्णं गदिमाउस्सं सलेस्सवसा ॥127॥
गति आयु जो पूरव बंधे जब क्षीणता को प्राप्त हों
अन्य गति को प्राप्त होता जीव लेश्या वश अहो ॥११७॥

अन्वयार्थ : पूर्व-बद्ध गति नाम-कर्म और आयु-कर्म क्षीण होने पर वे ही जीव अपनी लेश्या के वश से वास्तव में अन्य गति और अन्य आयु को प्राप्त होते हैं ।

जीव का संसारी-मुक्त भेद से उपसंहार

एदे जीवणिकाया देहप्पविचारमस्सिदा भणिदा । (118)
देहविहूणा सिद्धा भव्वा संसारिणो अभव्वा य ॥128॥
पूर्वोक्त जीव निकाय देहाश्रित कहे जिनदेव ने
देह विरहित सिद्ध हैं संसारी भव्य-अभव्य हैं ॥११८॥

अन्वयार्थ : ये जीव-निकाय देह प्रवीचार के आश्रित / देह का भोग-उपयोग करने-वाले कहे गए हैं । देह से रहित सिद्ध हैं । संसारी भव्य और अभव्य दो भेद-वाले हैं ।

भेद-भावना, हिताहित कर्तृत्व-भोक्तृत्व प्रतिपादन

ण हि इंदियाणि जीवा काया पुण छप्पयार पण्णत्ता । (119)
जं हवदि तेसु णाणं जीवो त्ति य तं परूवंति ॥129॥
ये इन्द्रियाँ नहिं जीव हैं षट्काय भी चेतन नहीं
है मध्य इनके चेतना वह जीव निश्चय जानना ॥११९॥
अन्वयार्थ : इन्द्रियाँ जीव नहीं हैं, कहे गए छह प्रकार के काय भी जीव नहीं हैं । उनमें जो ज्ञान है वह जीव है, ऐसा (सर्वज्ञ भगवान) प्ररूपित करते हैं ।
जाणदि पस्सदि सव्वं इच्छदि सुक्खं विभेदि दुक्खादो । (120)
कुव्वदि हिदमहिदं वा भुंजदि जीवो फलं तेसिं ॥130॥
जिय जानता अर देखता, सुख चाहता दुःख से डरे
भाव करता शुभ-अशुभ फल भोगता उनका अरे ॥१२०॥
अन्वयार्थ : जीव सब जानता है, देखता है, सुख को चाहता है, दु:ख से डरता है, हित-अहित करता है और उनके फल को भोगता है ।

जीव पदार्थ उपसंहार, अजीव पदार्थ प्रारंभ सूचक

एवमभिगम्म जीवं अण्णेहिं वि पज्जएहिं बहुगेहिं । (121)
अभिगच्छदु अज्जीवं णाणंतरिदेहिं लिंगेहिं ॥131॥
यों अन्य बहुविध परिणमन से जानकार उस जीव को ।
अब ज्ञान से भिन्न चिह्न द्वारा जानकर अजीव को ॥१२१॥
अन्वयार्थ : इसप्रकार अन्य भी अनेक पर्यायों द्वारा जीव को जानकर, ज्ञान से भिन्न लिंगों द्वारा अजीव को जानो ।

अजीव-तत्त्व प्रतिपादन

आगासकालपुग्गलधम्माधम्मेसु णत्थि जीवगुणा । (122)
तेसिं अचेदणत्तं भणिदं जीवस्स चेदणदा ॥132॥
जीव के गुण हैं नहीं जड़ पुद्गलादि पदार्थ में
उनमें अचेतनता कही चेतनपना है जीव में ॥१२२॥
अन्वयार्थ : आकाश, काल, पुद्गल, धर्म, अधर्म में जीव के गुण नहीं हैं । उनके अचेतनता कही गई है तथा जीव के चेतनता है ।
सुहदुक्खजाणणा वा हिदपरियम्मं च अहिदभीरुत्तं । (123)
जस्स ण विज्जदि णिच्चं तं समणा विंति अज्जीवं ॥133॥
सुख-दुःख का वेदन नही, हित-अहित में उद्यम नही
ऐसे पदार्थ अजीव है, कहते श्रमण उसको सदा ॥१२३॥
अन्वयार्थ : जिसके सदैव सुख-दु:ख का ज्ञान, हित के लिए उद्यम / प्रयास, अहित से भय नहीं है; उसे श्रमण अजीव कहते हैं ।

भेद-भावनार्थ देहगत शुद्ध जीव प्रतिपादन

संठाणा संघादा वण्णरसप्फासगंधसद्दा य । (124)
पोग्गलदव्वप्पभवा होंति गुणा पज्जया य बहू ॥134॥
अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं । (125)

जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥135॥
संस्थान अर संघात रस -गँध-वरण शब्द स्पर्श जो ।
वे सभी पुद्गल दशा में पुद्गल दरव निष्पन्न हैं ॥१२४॥
चेतना गुण युक्त आतम अशब्द अरस अगंध है ।
है अनिर्दिष्ट अव्यक्त वह, जानो अलिंगग्रहण उसे ॥१२५॥
अन्वयार्थ : संस्थान, संघात, वर्ण, रस, स्पर्श, गंध, शब्द इत्यादि अनेक गुण और पर्यायें पुद्गल द्रव्य से उत्पन्न होती हैं ।
जीव को अरस, अरूप, अगंध, अव्यक्त, चेतनागुण सहित, अशब्द, अलिंगग्रहण और अनिर्दिष्ट संस्थान-वाला जानो ।

जीव-पुद्गल का संयोग-परिणाम पुण्यादि सात पदार्थों का कारण

जो खलु संसारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो । (126)
परिणामादो कम्मं कम्मादो होदि गदिसु गदी ॥136॥
गदिमधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणि जायंते । (127)
तेहिं दु विसयग्गहणं तत्तो रागो व दोसो व ॥137॥
जायदि जीवस्सेवं भावो संसारचक्कवालम्मि । (128)
इदि जिणवरेहिं भणिदो अणादिणिधणो सणिधणो वा ॥138॥
संसार तिष्ठें जीव जो रागादि युत होते रहें
रागादि से हो कर्म आस्रव करम से गति-गमन हो ॥१२६॥
गति में सदा हो प्राप्त तन, तन इन्द्रियों से सहित हो
इन्द्रियों से विषय ग्रहण अर विषय से फिर राग हो ॥१२७॥
रागादि से भव चक्र में प्राणी सदा भ्रमते रहें
हैं अनादि अनन्त अथवा, सनिधन जिनवर कहे ॥१२८॥
अन्वयार्थ : वास्तव में जो संसारस्थ जीव है, उससे ही परिणाम होता है; परिणाम से कर्म, कर्मोदय के कारण गतियों में गमन होता है ।
गति प्राप्त के देह है, देह से इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं, उनसे विषयों का ग्रहण होता है, उनसे राग या द्वेष होता है ।
ये भाव संसार-चक्र में जीव के अनादि-अनन्त या अनादि-सान्त होते रहते हैं ऐसा जिनवरों ने कहा है ।

भाव पुण्य-पाप-योग्य परिणाम की सूचना

मोहो रागो दोसो चित्तपसादो य जस्स भावम्मि । (129)
विजदि तस्स सुहो वा असुहो वा होदि परिणामो ॥139॥
मोह राग अर द्वेष अथवा हर्ष जिसके चित्त में ।
इस जीव के शुभ या अशुभ परिणाम का सद्भाव है ॥१२९॥
अन्वयार्थ : जिसके भाव में मोह, राग, द्वेष या चित्त की प्रसन्नता विद्यमान है; उसके शुभ या अशुभ परिणाम होते हैं ।

द्रव्य-भाव पुण्य-पाप का व्याख्यान

सुहपरिणामो पुण्णं असुहो पावंति हवदि जीवस्स । (130)
दोण्हं पोग्गलमेत्तो भावो कम्पत्तणं पत्तो ॥140॥
शुभभाव जिय के पुण्य हैं अर अशुभ परिणति पाप हैं
उनके निमित से पौद्गलिक परमाणु कर्मपना धरें ॥१३०॥
अन्वयार्थ : जीव के शुभ परिणाम पुण्य और अशुभ परिणाम पाप हैं । उन दोनों के द्वारा पुद्गल मात्र भाव-कर्मत्व को प्राप्त होते हैं ।

पुण्य-पाप का मूर्तत्व-समर्थन

जम्हा कम्मस्स फलं विसयं फासेहिं भुंजदे णियदं । (131)
जीवेण सुहं दुक्खं तम्हा कम्माणि मुत्ताणि ॥141॥
जो कर्म का फल विषय है, वह इन्द्रियों से योग्य हैं
इन्द्रिय विषय हैं मूर्त इससे करम फल भी मूर्त है ॥१३१॥

अन्वयार्थ : क्योंकि कर्म का फल विषय नियम से स्पर्शनादि इन्द्रियों द्वारा सुख-दु:ख रूप में जीव भोगता है, इसलिए कर्म मूर्त है ।

कथंचित मूर्त जीव का मूर्त कर्म के साथ बन्ध प्रतिपादन

मुत्तो फासदि मुत्तं मुत्तो मुत्तेण बन्धमणुहवदि । (132)
जीवो मुत्तिविरहिदो गाहदि ते तेहिं उग्गहदि ॥142॥
मूर्त का स्पर्श मूरत, मूर्त बँधते मूर्त से
आत्मा अमूरत करम मूरत, अन्योन्य अवगाहन लहें ॥१३२॥

अन्वयार्थ : मूर्त मूर्त को स्पर्श करता है, मूर्त मूर्त के साथ बंध का अनुभव करता है / बँधता है; मूर्ति-विरहित-जीव उन्हें अवगाहन देता है और उनके द्वारा अवगाहित होता है ।

पुण्यास्रव प्रतिपादक

रागो जस्स पसत्थो अणुकंपासंसिदो य परिणामो । (133)
चित्ते णत्थि कलूस्सं पुण्णं जीवस्स आसवदि ॥143॥
हो रागभाव प्रशस्त अर अनुकम्प हिय में है जिसे
मन में नहीं हो कलुषता नित पुण्य आस्रव हो उसे ॥१३३॥

अन्वयार्थ : जिस जीव के प्रशस्त राग है, अनुकम्पा से युक्त परिणाम है, चित्त में कलुषता नहीं है, उसे पुण्य का आस्रव होता है ।

प्रशस्त राग

अरहंतसिद्धसाहुसु भत्ती धम्मम्मि जा य खलु चेट्ठा । (134)
अणुगमणं पि गुरूणं पसत्थरागो त्ति वुच्चंति ॥144॥
अरहंत सिद्ध अर साधु भक्ति गुरु प्रति अनुगमन जो
वह राग कहलाता प्रशस्त जँह धरम का आचरण हो ॥१३४॥

अन्वयार्थ : अरहन्त, सिद्ध, साधुओं के प्रति भक्ति, धर्म में यथार्थतया चेष्टा और गुरुओं का भी अनुगमन प्रशस्त राग है, ऐसा कहते हैं ।

अनुकम्पा का स्वरूप

तिसिदं वुभुक्खिदं वा दुहिदं दट्ठूण जो दु दुहिद मणो । (135)
पडिवज्जदि तं किवया तस्सेसा होदि अणुकंपा ॥145॥
क्षुधा तृषा से दुःखीजन को व्यथित होता देखकर
जो दुःख मन मे उपजता करुणा कहा उस दुःख को ॥१३५॥

अन्वयार्थ : तृषातुर, क्षुधातुर या दुखी को देखकर जो दुखित मनवाला उनके प्रति कृपा पूर्वक प्रवर्तन करता है, उसके यह अनुकम्पा है ।

चित्त की कलुषता का स्वरूप

कोधो व जदा माणो माया लोहो व चित्तमासेज्ज । (136)
जीवस्स कुणदि खोहं कलुसो त्ति य तं बुधा वेंति ॥146॥

अभिमान माया लोभ अर क्रोधादि भय परिणाम जो
सब कलुषता के भाव ये हैं क्षुभित करते जीव को ॥१३६॥

अन्वयार्थ : जब चित्त का आश्रय पाकर क्रोध, मान, माया, लोभ जीव को क्षुब्ध करते हैं; तब उसे ज्ञानी कलुषता कहते हैं ।

पापास्रव प्रतिपादक

चरिया पमादबहुला कालुस्सं लोलदा य विसयेसु । (137)
परपरितावपवादो पावस्स य आसवं कुणदि ॥147॥
प्रमाद युत चर्या कलुषता, विषयलोलुप परिणति
परिताप अर अपवाद पर का, पाप आस्रव हेतु हैं ॥१३७॥

अन्वयार्थ : प्रमाद की बहुलता युक्त चर्या, कलुषता और विषयों में लोलुपता तथा पर को परिताप देना और पर का अपवाद करना पाप का आस्रव करता है ।

भाव पापास्रव का विस्तार

सण्णाओ य तिलेस्सा इंदियवसदा य अट्टरुद्दाणि । (138)
णाणं च दुप्पउत्तं मोहो पावप्पदा होंति ॥148॥
चार संज्ञा तीन लेश्या पाँच इन्द्रियाधीनता
आर्त-रौद्र कुध्यान अर कुज्ञान है पापप्रदा ॥१३८॥

अन्वयार्थ : (चार) संज्ञायें, तीन लेश्यायें, इन्द्रियों की अधीनता, आर्त और रौद्र ध्यान, दुष्प्रयुक्त ज्ञान और मोह, ये पापप्रद हैं ।

संवर पदार्थ प्रतिपादक अंतराधिकार

इंदियकसायसण्णा णिग्गहिदा जेहिं सुट्ठुमग्गम्मि । (139)
जावत्तावत्तेसिं पिहिदं पावासवच्छिद्दं ॥149॥
कषाय-संज्ञा इन्द्रियों का निग्रह करें सन् मार्ग से
वह मार्ग ही संवर कहा, आस्रव निरोधक भाव से ॥१३९॥

अन्वयार्थ : सम्यक् तया मार्ग में रहकर जिसके द्वारा जितना इन्द्रिय, कषाय और संज्ञाओं का निग्रह किया जाता है, उसके उतना पापास्रवों का छिद्र बन्द होता है ।

पुण्य-पाप संवर का स्वरूप

जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोहो व सव्वदव्वेसु । (140)
णासवदि सुहं असुहं समसुहदुक्खस्स भिक्खुस्स ॥150॥
जिनको न रहता राग-द्वेष अर मोह सब परद्रव्य में
आस्रव उन्हें होता नहीं, रहते सदा समभाव में ॥१४०॥

अन्वयार्थ : सुख-दुःख में सम-भावी जिन भिक्षु / मुनि के सभी द्रव्यों में राग, द्वेष, मोह नहीं है; उन्हें शुभ-अशुभ का आस्रव नहीं होता है ।

अयोग-केवली जिन की अपेक्षा सम्पूर्ण संवर

जस्स जदा खलु पुण्णं जोगे पावं च णत्थि विरदस्स । (141)
संवरणं तस्स तदा सुहासुहकदस्स कम्मस्स ॥151॥
जिस व्रती के त्रय योग में जब पुण्य एवं पाप ना
उस व्रती के उस भाव से तब द्रव्य संवर वर्तता ॥१४१॥

अन्वयार्थ : वास्तव में जब जिस विरत के योग में पुण्य-पाप नहीं हैं, तब उनके शुभाशुभ कृत कर्म का संवर होता है ।

निर्जरा पदार्थ प्रतिपादक अंतराधिकार

संवरजोगेहिं जुदो तवेहिं जो चिट्ठदे बहुविहेहिं । (142)
कम्माणं णिज्जरणं बहुगाणं कुणदि सो णियदं ॥152॥
शुद्धोपयोगी भावयुत जो वर्तते हैं तपविषै
वे नियम से निज में रमे बहु कर्म को भी निर्जरें ॥१४२॥
अन्वयार्थ : संवर और योग से युक्त जो जीव अनेक प्रकार के तपों में प्रवृत्ति करता है, वह नियम से अनेक कर्मों की निर्जरा करता है ।

आत्म-ध्यान निर्जरा का कारण

जो संवरेण जुत्तो अप्पट्ठपसाहगो हि अप्पाणं । (143)
मुणिदूण झादि णियदं णाणं सो संधुणोदि कम्मरयं ॥153॥
आत्मानुभव युत आचरण से ध्यान आत्मा का धरे
वे तत्त्वविद संवर सहित हो कर्म रज को निर्जरें ॥१४३॥
अन्वयार्थ : आत्मार्थ का प्रसाधक, संवर से युक्त जो (जीव) वास्तव में आत्मा को जानकर नियत ज्ञान का ध्यान करता है, वह कर्मरज की निर्जरा करता है ।

ध्यान की सामग्री और लक्षण

जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोहो व जोगपरिणामो । (144)
तस्स सुहासुहदहणो झाणमओ जायदे अगणी ॥154॥
नहिं राग-द्वेष-विमोह अरु नहिं योग सेवन है जिसे ।
प्रगटी शुभाशुभ दहन को, निज ध्यानमय अग्नि उसे ॥१४४॥
अन्वयार्थ : जिसके राग, द्वेष, मोह तथा योग परिणमन नहीं है; उसके शुभाशुभ को जलाने वाली ध्यानमय अग्नि उत्पन्न होती है ।

बन्ध पदार्थ प्रतिपादक अंतराधिकार

जं सुहमसुहमुदिण्णं भावं रत्तो करेदि जदि अप्पा । (145)
सो तेण हवदि बंधो पोग्गलकम्मेण विविहेण ॥155॥
आतमा यदि मलिन हो करता शुभाशुभ भाव को
तो विविध पुद्गल कर्म द्वारा प्राप्त होता बन्ध को ॥१४५॥
अन्वयार्थ : यदि रागी आत्मा उन शुभ-अशुभ से प्रगट होने वाला भाव करता है तो वह उसके द्वारा अनेक प्रकार के पुद्गल कर्म से बँधता है ।

बहिरंग-अंतरंग बंध के कारण

जोगणिमित्तं गहणं जोगो मणवयणकायसंभूदो । (146)
भावणिमित्तो बंधो भावो रदिरागदोसमोहजुदो ॥156॥
है योग हेतुक कर्म आस्रव योग तन-मन जनित है ।
है भाव हेतुक बंध अर भाव रति-रुष सहित है ॥१४६॥
अन्वयार्थ : ग्रहण योग निमित्तक है; योग मन, वचन, काय से उत्पन्न होता है; बंध भाव निमित्तक है; भाव रति, राग, द्वेष, मोह युक्त है ।

बंध का बहिरंग निमित्त मिथ्यात्वादि द्रव्य प्रत्यय भी

हेदु हि चदुव्वियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारणं भणियं । (148)
तेसिं पि य रागादी तेसिमभावे ण बज्झंते ॥157॥
प्रकृति प्रदेश आदि चतुर्विधि कर्म के कारण कहे
रागादि कारण उन्हे भी, रागादि बिन वे ना बंधे ॥१४७॥

अन्वयार्थ : चार प्रकार के हेतु आठ प्रकार के (कर्मों के) कारण कहे गए हैं, उनके भी कारण रागादि हैं, उन (रागादि) के अभाव में (कर्म) नहीं बँधते हैं ।

भाव-मोक्ष-रूप एकदेश मोक्ष का व्याख्यान

हेदुमभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोधो । (148)
आसवभावेण बिणा जायदि कम्मस्स दु णिरोधो ॥158॥
कम्मस्साभावेण य सव्वण्हू सव्वलोगदरसी य । (149)
पावदि इंदियरहिदं अव्वाबाहं सुहमणंतं ॥151॥
मोहादि हेतु अभाव से ज्ञानी निरास्रव नियम से
भावास्रवों के नाश से ही कर्म का आस्रव रुके ॥१४८॥
कर्म आस्रव रोध से सर्वत्र समदर्शी बने
इन्द्रिसुख से रहित अव्याबाध सुख को प्राप्त हों ॥१४९॥

अन्वयार्थ : हेतु के अभाव में ज्ञानी के नियम से आस्रव का निरोध होता है तथा आस्रव भाव के नहीं होने से कर्म का निरोध हो जाता है । कर्म का अभाव होने पर सर्वज्ञ और सर्वलोकदर्शी होते हुए इन्द्रिय रहित अव्याबाध अनन्त सुख को प्राप्त होते हैं ।

द्रव्य-कर्म-मोक्ष प्रतिपादन

दंसणणाणसमग्गं झाणं णो अण्णदव्वसंजुत्तं । (150)
जायदि णिज्जरहेदू सभावसहिदस्स साहुस्स ॥160॥
ज्ञान दर्शन पूर्ण अर परद्रव्य विरहित ध्यान जो
वह निर्जरा का हेतु है निज भाव परिणत जीव को ॥१५०॥

अन्वयार्थ : स्वभाव सहित साधु के दर्शन-ज्ञान से परिपूर्ण, अन्य द्रव्यों से संयुक्त नहीं होने वाला ध्यान निर्जरा का हेतु होता है ।

द्रव्य-मोक्ष

जो संवरेण जुत्तो णिज्जरमाणोय सव्वकम्माणि । (151)
ववगदवेदाउस्सो मुयदि भवं तेण सो मोक्खो ॥161॥
जो सर्व संवर युक्त हैं अरु कर्म सब निर्जर करें
वे रहित आयु वेदनीय और सर्व कर्म विमुक्त है ॥१५१॥

अन्वयार्थ : जो संवर से सहित, सभी कर्मों की निर्जरा करता हुआ, वेदनीय और आयुष्क से रहित है, वह भव को छोडता है; इसलिए मोक्ष है ।

जीव-स्वभाव

जीवसहाओ णाणं अप्पडिहददंसणं अणण्णमयं । (152)
चरियं च तेसु णियदं अत्थित्तमणिंदियं भणियं ॥162॥

चेतन स्वभाव अनन्यमय निर्बाध दर्शन-ज्ञान है
दृग ज्ञानस्थित अस्तित्व ही चारित्र जिनवर ने कहा ॥१५२॥
अन्वयार्थ : अनन्य-मय, अप्रतिहत ज्ञान-दर्शन जीव का स्वभाव है, तथा उनमें नियत अस्तित्व-मय अनिंदित चारित्र कहलाता है ।

स्वसमय-परसमय प्रतिपादन

जीवो सहावणियदो अणियदगुणपज्जओध परसमओ । (153)
जदि कुणदि सगं समयं पब्भस्सदि कम्मबंधादो ॥163॥
स्व समय स्वयं से नियत है पर भाव अनियत पर समय
चेतन रहे जब स्वयं में तब कर्मबंधन पर विजय ॥१५३॥
अन्वयार्थ : स्वभाव नियत जीव यदि अनियत गुण-पर्याय वाला होता है तो वह पर-समय है; तथा यदि वह स्व-समय को करता है, तो कर्म-बंध से छूट जाता है ।

परसमय का विशेष विवरण

जो परदव्वम्हि सुहं असुहं रायेण कुणदि जदि भावं । (154)
सो सगचरित्तभट्ठो परचरियचरो हवदि जीवो ॥164॥
जो राग से पर द्रव्य में करते शुभाशुभ भाव हैं
परचरित में लवलीन वे स्व-चरित्र से परिभ्रष्ट है ॥१५४॥
अन्वयार्थ : जो (जीव) राग से परद्रव्य में यदि शुभ-अशुभ भाव करता है, तो वह जीव स्वचारित्र से भ्रष्ट परचारित्र रूप आचरण करने वाला होता है ।

परचारित्र परिणत पुरुष को मोक्ष का निषेध

आसवदि जेण पुण्णं पावं वा अप्पणोथ भावेण । (155)
सो तेण परचरित्तो हवदित्ति जिणा परूवेंति ॥165॥
पुण्य एवं पाप आस्रव आतम करे जिस भाव से
वह भाव है परचरित ऐसा कहा है जिनदेव ने ॥१५५॥
अन्वयार्थ : आत्मा के जिस भाव से पुण्य या पाप का आस्रव होता है, वह उससे परचारित्र वाला होता है -- ऐसा 'जिन' प्ररूपित करते हैं ।

स्व-समय का विशेष विवरण

सो सव्वसंगमुक्को णण्णमणो अप्पणं सहावेण । (156)
जाणदि पस्सदि णियदं सो सगचरियं चरदि जीवो ॥166॥
जो सर्व संगविमुक्त एवं अनन्य आत्मस्वभाव से
जाने तथा देखे नियत रह उसे चारित्र है कहा ॥१५६॥
अन्वयार्थ : सर्व संग मुक्त और अनन्यमन जो स्वभाव द्वारा नियत आत्मा को जानता-देखता है, वह जीव स्वचारित्र का आचरण करता है ।

स्वसमय को प्रकारान्तर से व्यक्त करते हैं

चरियं सगं सो जो परदव्वप्पभावरहिदप्पा । (157)
दंसणणाणवियप्पं अवियप्पं चरदि अप्पादो ॥167॥

पर द्रव्य से जो विरत हो निजभाव में वर्तन करे
गुणभेद से भी पार जो वह स्व-चारित को आचरे ॥१५७॥

अन्वयार्थ : परद्रव्यात्मक भावों से रहित स्वरूप वाला जो दर्शन-ज्ञान के विकल्प को आत्मा से अविकल्प / अभिन्न रूप आचरण करता है, वह स्वचारित्र का आचरण करता है ।

व्यवहार मोक्ष-मार्ग का निरूपण

धम्मादीसद्दहणं सम्मत्तं णाणमंगपुव्वगदं । (158)
चिट्ठा तवं हि चरिया ववहारो मोक्खमग्गोत्ति ॥168॥
धर्मादि की श्रद्धा सुदृढ पूर्वांग बोध-सुबोध है
तप मॉहि चेष्टा चरण मिल व्यवहार मुक्तिमार्ग है ॥१५८॥

अन्वयार्थ : धर्मादि का श्रद्धान सम्यक्त्व है; अंग-पूर्वगत ज्ञान, ज्ञान है और तप में चेष्टा / प्रवृत्ति चारित्र है, ऐसा व्यवहार मोक्षमार्ग है ।

निश्चय मोक्ष-मार्ग का प्रतिपादन

णिच्छयणयेण भणिदो तिहि तेहिं समाहिदो हु जो अप्पा । (159)
ण कुणदि किंचिवि अण्णं ण मुयदि मोक्खमग्गोत्ति ॥169॥
जो जीव रत्नत्रय सहित आत्म चिन्तन में रमे
छोड़े ग्रहे नहि अन्य कुछ शिवमार्ग निश्चय है यही ॥१५९॥

अन्वयार्थ : उन तीन में समाहित होता हुआ जो आत्मा वास्तव में न तो कुछ करता है और न छोडता है, वह मोक्षमार्ग है, ऐसा कहा गया है ।

निश्चय-मोक्षमार्ग

जो चरदि णादि पेच्छदि अप्पाणं अप्पणा अणण्णमयं । (160)
सो चारित्तं णाणं दंसणमिदि णिच्छिदो होदि ॥170॥
देखे जाने आचरे जो अनन्यमय निज आत्म को
वे जीव दर्शन-ज्ञान अर चारित्र हैं निश्चयपने ॥१६०॥

अन्वयार्थ : जो अनन्यमय आत्मा का आत्मा द्वारा आचरण करता है, उसे जानता है, देखता है; वह चारित्र ज्ञान-दर्शनमय है ऐसा निश्चित है ।

भाव सम्यग्दृष्टि व्याख्यान

जेण विजाणदि सव्वं पेच्छदि सो तेण सोक्खमणुभवदि । (161)
इदि तं जाणदि भवियो अभव्वसत्तो ण सद्दहदि ॥171॥
जाने-देखे सर्व जिससे हो सुखानुभव उसी से
यह जानता है भव्य ही श्रद्धा करे ना अभव्य जिय ॥१६१॥

अन्वयार्थ : जिससे सबको जानता और देखता है, उससे वह सौख्य का अनुभव करता है ऐसा जानता है वह भव्य है, अभव्य जीव इसका श्रद्धान नहीं करते हैं ।

निश्चय-व्यवहार रत्नत्रय का फल

दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गोत्ति सेविदव्वाणि । (162)
साधूहिं इदं भणिदं तेहिं दु बंधो वा मोक्खो वा ॥172॥

दृग-ज्ञान अर चारित्र मुक्तिपंथ मुनिजन ने कहे
पर ये ही तीनों बंध एवं मुक्ति के भी हेतु हैं ॥१६२॥
अन्वयार्थ : दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग हैं; अत: वे सेवन करने योग्य हैं, ऐसा साधुओं ने कहा है; परंतु उनसे बंध भी होता है और मोक्ष भी ।

स्थुल-सूक्ष्म पर-समय का व्याख्यान

अण्णाणादो णाणी जदि मण्णदि सुद्धसंपयोगादो । (163)
हवदित्ति दुक्खमोक्खो परसमयरदो हवदि जीवो ॥173॥
शुभ-भक्ति से दुख-मुक्त हो जाने यदि अज्ञान से
उस ज्ञानी को भी परसमय ही कहा है जिनदेव ने ॥१६३॥
अन्वयार्थ : यदि अज्ञान से ज्ञानी ऐसा मानता है कि शुद्ध सम्प्रयोग (शुभभाव) से दु:ख-मोक्ष होता है तो वह जीव परसमयरत है ।

शुद्ध सम्प्रयोग के मोक्ष का निषेध

अरहंतसिद्धचेदियपवयणगणणाणभीत्तिसंपण्णों । (164)
बंधदि पुण्णं बहुसो ण दु सो कम्मक्खयं कुणदि ॥174॥
अरहंत सिद्ध मुनिशास्त्र की अर चैत्य की भक्ति करे
बहु पुण्य बंधता है उसे पर कर्मक्षय वह नहि करे ॥१६४॥
अन्वयार्थ : अरहन्त, सिद्ध, चैत्य (प्रतिमा), प्रवचन (जिनवाणी), मुनिगण, ज्ञान के प्रति भक्ति सम्पन्न जीव बहुत पुण्य बाँधता है; परंतु वह कर्म का क्षय नहीं करता है ।
जस्स हिदयेणुमेत्तं वा परदव्वम्हि विज्जदे रागो । (165)
सो ण विजाणदि समयं सगस्स सव्वागमधरोवि ॥175॥
अणुमात्र जिसके हृदय में परद्रव्य के प्रति राग है
हो सर्व आगमधर भले जाने नहीं निजभक्तिको ॥१६५॥
अन्वयार्थ : जिसके हृदय में परद्रव्य के प्रति अणु मात्र भी राग विद्यमान है, वह सर्व आगमधर होने पर भी अपने समय को नहीं जानता है ।

राग ही सम्पूर्ण अनर्थ-परम्पराओं का मूल

धरिदुं जस्स ण सक्को चित्तंभामो बिणा दु अप्पाणं । (166)
रोधो तस्स ण विज्जदि सुहासुहकदस्स कम्मस्स ॥176॥
चित भ्रम से रहित हो निशंक जो होता नहीं
हो नहीं सकता उसे संवर अशुभ अर शुभ दुःख का ॥१६६॥
अन्वयार्थ : जो चित्त के भ्रमण से रहित आत्मा को धारण करने में / रखने में समर्थ नहीं है, उसके शुभाशुभ कर्मों का निरोध नहीं होता है ।

सूक्ष्म परसमय के व्याख्यान का उपसंहार

तम्हा णिव्वुदिकामो णिस्संगो णिम्ममो य भविय पुणॊ । (167)
सिद्धेसु कुणदि भत्तिं णिव्वाणं तेण पप्पेदि ॥177॥
निसंग निर्मम हो मुमुक्षु सिद्ध की भक्ति करें
सिद्धसम निज में रमन कर मुक्ति कन्या को वरें ॥१६७॥

अन्वयार्थ : इसलिए निर्वाण का इच्छुक जीव नि:संग और निर्मम होकर सिद्धों में भक्ति करता है, उससे वह निर्वाण को प्राप्त होता है ।

पुण्यास्रव के मोक्ष नहीं होता है

सपदत्थं तित्थयरं अभिगदबुद्धिस्स सुत्तरोचिस्स । (168)
दूरयरं णिव्वाणं संजमतवसंपजुत्तस्स ॥178॥
तत्त्वार्थ अर जिनवर प्रति जिसके हृदय में भक्ति है
संयम तथा तप युक्त को भी दूरतर निर्वाण है ॥१६८॥
अन्वयार्थ : संयम-तप संयुक्त होने पर भी जिसकी बुद्धि का आकर्षण पदार्थों सहित तीर्थंकर के प्रति है तथा जिसे सूत्र के प्रति रुचि है, उसे निर्वाण दूरतर है ।

शुद्ध सम्प्रयोग से पुण्यबंध

अरहंतसिद्धचेदियपवयणभत्तो परेण णियमेण । (169)
जो कुणदि तवोकम्मं सो सुरलोगं समादियदि ॥179॥
अरहंत-सिद्ध-जिनवचन सह जिनप्रतिमाओ के भजन को
संयम सहित तप जो करें वे जीव पाते स्वर्ग को ॥१६९॥
अन्वयार्थ : अरहन्त, सिद्ध, चैत्य, प्रवचन का भक्त होता हुआ जो उत्कृष्टरूप से तप:कर्म करता है, वह नियम से सुरलोक को प्राप्त होता है ।

पन्चास्तिकाय प्राभृत शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता

तम्हा णिव्वुदिकामो रागं सव्वत्थ कुणदु मा किंचि । (170)
सो तेण वीदारागो भवियो भवसायरं तरदि ॥180॥
यदि मुक्ति का है लक्ष्य तो फिर राग किंचित ना करो
वीतरागी बन सदा को भव जलधि से पार हो ॥१७०॥
अन्वयार्थ : इसलिए मोक्षाभिलाषी सर्वत्र किंचित् भी राग न करे । इससे वह वीतरागी भव्य भवसागर को तिर जाता है / पार कर जाता है ।

उपसंहार रूप से शास्त्र परि-समाप्ति-हेतु

मग्गप्पभावणट्ठं पवयणभत्तिप्पचोदिदेण मया । (171)
भणियं पवयणसारं पंचत्थीयसंगहं सुत्तं ॥181॥
प्रवचनभक्ति से प्रेरित सदा यह हेतु मार्ग प्रभावना
दिव्यध्वनि का सारमय यह ग्रन्थ मुझसे है बना ॥१७१॥
अन्वयार्थ : प्रवचन की भक्ति से प्रेरित मेरे द्वारा मार्ग प्रभावना के लिए प्रवचन का सारभूत यह 'पंचास्तिकाय-संग्रह' सूत्र कहा गया है ।